THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180378
UNIVERSAL LIBRARY

गादड़ का शिकार

•

मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताई

किताब-महल

प्रयाग

॥)

पहिला संस्करण, १९४४

ked 1969

प्रकाशक—किताब-महल, प्रयाग
मुद्रक—पं० भगनकृष्ण दीक्षित,
दीक्षित प्रेस, प्रयाग

सूची

विषय			पृष्ठ
१—गीदड़ का शिकार	...	...	१
२—भाग गई	...	...	११
३—पट्टी	...	...	२६
४—यह तस्वीर किसकी है	...	..	३०
५—चिल्लाकशी	...	..	५६
६—ग़लत फ़हमी	...	..	७८
७—खो गया	...	...	६६

सूचना

हम स्वर्गीय अज़ीमबेग चग़ताई साहब की कुछ कहानियों का संग्रह हिन्दी जनता के सामने रख रहे हैं। थोड़े बहुत अनुवाद जो पुस्तक रूप में मिलते हैं उनमें अनुवादक ने यही कोशिश की है कि ज्यादा से ज्यादा उर्दू शब्दों का हिन्दी अनुवाद कर दिया जाय; ऐसा करने से लेख की (Spirit) मारी जाती है। इन कहानियों में इसका बहुत ध्यान रक्खा गया है। चग़ताई साहब के आगामी अनुवादों में हम और भी ध्यान रक्खेंगे।

अनुवाद को और भी अच्छा बनाने के लिये जो विचार प्रकट करेंगे उनके हम बहुत आभारी होंगे।

प्रकाशक

गीदड़ का शिकार

[१]

एक दिन की बात है कि सलाह हुई बतख के शिकार को चलें। आख़िरी सर्दी का मौसम था और 'जाती फ़सिल' की चीज़ समझ कर और भी अधिक इच्छा हुई। बतख का शिकार वैसे भी बहुत मनोरंजक होता है। और फिर राजपूताने में, जहाँ इकट्ठा पानी सिवाय घड़े के और कहीं देखने को कम मिलता है, इतना पानी देखना कि उसमें बतखें तैरती हों और उनका शिकार! पर सवाल यह था कि ऐसी झील मिले कहाँ? पूरे एक दिन और एक रात के रास्ते पर एक झील पसंद की गई। सवारी के लिए ऊंट या बैलगाड़ी। लम्बे-चौड़े रेगिस्तान को चीर कर जाना बैलगाड़ियों पर कुछ ठीक नहीं बनता। अतएव यह तय हुआ कि दो ऊँट अच्छी बहती हुई चाल के लिए जायँ।

[२]

इस योजना को एक दिन सचमुच कार्यान्वित किया गया। रेल पर एक स्टेशन सफ़र करके उतर पड़े और वहाँ से ऊँटों पर बैठ कर रवाना हुए।

शाम को चार बजे के क़रीब हम गाँव में पहुँच गए, जहाँ गाँव के ज़मींदार साहब हमारा पहिले ही से इन्तज़ार कर रहे थे।

पर यहाँ पहुँचते ही एक और मामला पेश आया। वह यह कि गाँव के क़रीब पौन मील के फ़ासले पर एक तेंदुए ने एक गाय के बच्चे को मार कर खा लिया था और यहाँ गाँव के शिकारी यह सोच रहे थे कि क्यों न तेंदुए का शिकार कर लिया जाय? मैंने तुरन्त तेंदुए के शिकार का समर्थन किया। अन्त में सब ने एकमत हो कर मौक़े पर चलने का निश्चय किया।

[३]

हम जिस जगह पहुँचे उसके दाहिनी ओर सूखी पहाड़ियों का सिलसिला था, जो ज़रा आगे जाकर सामने दीवार की तरह आ गया था। दलवाँ पहाड़ी नीचे मैदान तक चली गई थी। सामने गाय के बच्चे की आधी लाश पड़ी हुई थी।

अब यहाँ सवाल यह था कि हम अपना बैठने का स्थान कहाँ चुनें। पेड़ का नाम भी नहीं था जिस पर मचान बाँधते। अन्त में एक बढ़िया उपाय सूझ गया।

मास्टर साहब के स्कूल में तीन ब्लैक-बोर्ड अच्छी हालत में थे और एक-एक टूटा हुआ था। यह सोचा गया कि इन चारों ब्लैक-बोर्डों को चारों ओर दीवार की तरह खड़ा कर दिया जाय और हर तरफ़ ख़ाली जगह में काँटे और झाड़ियाँ जमा करके टट्टी-सी बना दी जाय। अन्दर सब छिप कर बैठ रहेंगे। यह प्रस्ताव सब ने स्वीकार किया।

शीघ्र ही दोनों ऊँटों पर चारों ब्लैक-बोर्ड लद कर आ गए। गाय के बच्चे की लाश से कोई पच्चीस-तीस गज़ के फ़ासले पर

खुले मैदान में, किन्तु पहाड़ी की छाया में ब्लैक-बोर्ड खड़े करके सुरक्षित स्थान बना लिया गया। तख्ते के निचले खुले हुए भाग को हमने मोटी-मोटी शाखों तथा काँटों और इधर-उधर से पत्थरों से भली-भाँति ढक दिया और उसे सचमुच सुदृढ़-सा क़िला बना लिया। खाँ साहब उसकी तैयारी ही में थे कि मैं गाँव वापस लौट गया ताकि भोजन आदि से छुट्टी पा कर शीघ्र ही तैयार हो जाऊँ। मेरे आने के थोड़ी देर बाद खाँ साहब और मास्टर साहब भी लौट आए और यह निश्चय हुआ कि खाना खाकर जल्दी से तैयार हो कर चलें।

[४]

अब हमारी तैयारी बस देखने योग्य थी। मुझे गोली के कारतूस की चिंता हुई। खाँ साहब ने ज़मीन में छोटा-सा गड्ढा खोद कर सीसा पिघला कर दो गोलियाँ बनाईं। उनको छील कर और घिस कर मेरे कारतूस के लिए ठीक किया गया। स्वयं खाँ साहब के पास और मास्टर साहब के पास "ठूसम ठाँस" वाली अर्थात् टोपीदार बन्दूकें थीं। मास्टर साहब के पास दो नली वाली बन्दूक थी; खाँ साहब की बन्दूक एकनली की थी।

खाँ साहब ने अपनी बन्दूक में बहुत-सी बारूद भर कर उसमें गोली डाली। गोली इतनी कसी हुई थी कि उसको खास ढङ्ग से डाल कर पत्थर से ठोंका गया तब कहीं अन्दर अपनी जगह पर पहुँची। सारांश यह कि हम तीन आदमी कोई रात को आठ बजे शिकार के लिए चले। मेरे साथी ऐसे थके हुए थे

कि उन्होंने सोने की ठहराई। हम तीनों आदमी बड़ी सावधानी और शान्ति के साथ मौक़े पर पहुँचे। रात अँधियारी थी। हम तीनों टटोल-टटोल कर अपने क़िले में घुसे। और अब प्रवेश के बाद मुझे पता चला और होश आया कि इस अँधकार में शिकार कैसे सम्भव होगा और यह कि यदि सर्दी अधिक पड़ी तब क्या करेंगे ? मूर्खता तो देखिए कि बिछाने तक को कोई चीज़ न लाए थे। थोड़ी देर विभिन्न प्रकार से उकड़ूँ बैठने की चेष्टा करते और फिर पसर कर बैठ रहे। अँधेरा काफ़ी था और ख़ाँ साहब ने अब अपनी बन्दूक़ तथा लकड़ी की सहायता से झाड़ियाँ हटा कर देखने और बन्दूक़ चलाने के लिए छेद किया, बल्कि यों कहिए कि अच्छी ख़ासी खिड़की निकाल ली। हम तीनों ने बाहर झाँक कर देखा तो मालूम हुआ कि यद्यपि अँधेरा है पर शेर साफ़ दिखाई देगा और शिकार करना सम्भव है। ख़ाँ साहब ने बोलने को एकदम मना कर दिया, किन्तु स्वयं उन्होंने अपने शेर के झूठे क़िस्सों का ताँता बाँध दिया। वह भी इस तरह कि यदि हम सन्देह करें या आपत्ति करें तो तुरन्त कहते—"बोलो मत, चुप रहो चुप। शेर का शिकार है।" मतलब यह कि सुने जाओ।

सारांश यह कि जब सर्दी और बेचैनी तथा नींद और थकावट ने निढाल कर दिया और जी में यही आया कि जिस तरह भी बन पड़े पड़ रहें और रात आधी हो कर ढलने को हुई तो कमबख़्त तेंदुआ गया।

[५]

ख़ुदा की पनाह। हम पहाड़ी की छाया में थे। तेंदुए ने पहाड़ी के ऊपर गुर्राना शुरू कर दिया। बस सचमुच यही मालूम हुआ कि हमारे सिर पर बोल रहा है। ऐसा कि यदि ऊपर से फाँदा तो बीचों-बीच में आकर गिरेगा। यद्यपि तेंदुआ हम से दूर था। गुर्राहट को एक झटका-सा लगा और तेंदुआ सचमुच छलाँग मार कर नीचे गिरा और गिरते ही जान पड़ा मानो एक से दो हो गए। दोनों बड़ी ज़ोर से गुर्राये। वास्तव में ऐसा जान पड़ता है कि एक शायद पहिले ही किसी तरफ़ से रेंग कर आ चुका था।

खाँ साहब ने जल्दी से अपनी बन्दूक़ सँभाली। ज़रा सोचिए तो कि उस समय मुझे यह पता चला कि खाँ साहब के हाथ में कँपकँपी भी है। उनकी बन्दूक़ की नाल खिड़की के सामने हिल नहीं रही थी, बल्कि इस प्रकार मँडला रही थी कि खिड़की से गोली का निकल जाना कठिन प्रतीत होता था। मैंने भी खिड़की से झाँक कर देखा और मुझे ज्ञात हुआ कि कम से कम मेरे लिए तो इस अँधेरे में निशाना लगाना कठिन ही नहीं असम्भव है। दो तेंदुए लाश के पास बैठे थे और उनके खाने का "चपड़-चपड़" शब्द सुनाई पड़ रहा था। जैसे कोई बड़े कुत्ते खाते हों। वह गुर्राते भी जाते थे। हमारे निवास-स्थान के सामने ही यह सब कार्यवाही हो रही थी और वह भी इतने निकट कि सचमुच मानो हमारी छाती पर कोदो दली जा रही थी।

हम तीनों ने पारी-पारी बन्दूक़ उठाई, निशाने साधे पर फ़ैर न किया। कम से कम मैंने तो इस वजह से न किया कि यदि निशाना ठीक न बैठा तब क्या होगा? ज़रा सोचिए कि बीस-पचीस गज़ के फ़ासले पर दो तेंदुए बैठे डकार रहे हैं। अतएव मैंने अँधेरे के कारण निशाना ठीक न सधने की आपत्ति के साथ फ़ैर करने से इनकार कर दिया। मास्टर साहब पढ़ाई का सारा गुर भूल गए। यद्यपि उनकी निगाह कमज़ोर न थी पर चूँकि वह मुझसे कहीं अधिक चतुर थे अतः उन्हें भी तेंदुए न दिखाई दिए। फिर भला वह मारते कहाँ से। रह गए ख़ाँ साहब, तो वे फ़ैर किए दे रहे थे। अब इस बीच में तेंदुए दौड़ धूप में भी लग गए। एक-दूसरे के पीछे दौड़ते खेलते ग़ुर्राते इधर भी चले आते। इस प्रकार कि भय से हम लोगों के रोंगटे खड़े हो जाते। अब ख़ाँ साहब ने हम लोगों को मौक़ा देने के बाद अपनी बन्दूक़ सँभाली और ठीक उस मौक़े पर जब तेंदुए ग़ुर्राकर एक-दूसरे से लिपट रहे थे फ़ैर कर दिया। बन्दूक़ की भयानक आवज़ पहाड़ियों में दूर तक गूँजती चली गई, और हमारा भाग्य देखिए कि तेंदुए उछल कर शान्त हो कर पहिले तो बैठ गए किन्तु फिर आवाज़ को शायद दूसरी ओर से आई हुई समझ कर उलटा हमारी ही ओर बढ़ आए। और एक मिनट भी न बीता होगा कि न केवल दोनों तेंदुए फिर दौड़ने और खेलने में लग गए बल्कि एक तीसरा भी आ गया। यह अब आया या पहले, यह नहीं कह सकते पर देखने में कमवख़्त

अभी आया। अब ज़रा यह सोचिए कि उधर तो कमबख्त तेंदुए अपने खेल में गुर्राते लुढ़कते हमारे क़िले के बीस क़दम तक आ जाते हैं और खाँ साहब हैं कि अपनी ठूँसम-ठाँस में दूसरी गोली ठोंकने को उपयुक्त पत्थर ढूढ़ने को कह रहे हैं। हम दोनों ने निश्चय कर लिया था कि कुछ भी हो पर इस बुड्ढे खाँ साहब को बन्दूक़ न चलाने देंगे। पर वह भला मानने वाले थे? गोली डालकर किसी न किसी तरह ठोंक ही दी। पर कुशल हुई कि आधी नाल में जाकर वह ऐसी अड़ी कि किसी तरह आगे बढ़ाए न बढ़ी। दुष्ट तेंदुए खेलते और गुर्राते हुए हमारे क़िले के बिलकुल पास आ जाते और एक बार तो एक तेंदुए ने कोई पन्द्रह-बीस क़दम पर खड़े होकर ज़मीन को इस प्रकार सूँघना शुरू किया कि सचमुच मेरी भातर की साँस भीतर और बाहर की बाहर। बस यही जान पड़ा कि अब आता है इस ओर। यद्यपि यह इतमीनान था कि यदि हम पर आक्रमण हुआ तो बन्दूकें मौजूद हैं। पर जनाब हम ठहरे शान्तिप्रिय आदमी, झगड़े-रगड़े से दूर ही रहना चाहते थे।

[६]

वर्तमान परिस्थिति हद से ज़्यादा कष्टप्रद और संकटमय थी और सचमुच बिलकुल भय की आरी से चीरे जाने का आनन्द आ रहा था।

परिस्थिति की गम्भीरता प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही थी। तब एक तेंदुआ सचमुच हमारे सामने वाले ब्लैक-बोर्ड के नीचे

की झाड़ियों आदि को खड़खड़ करके कुरेदता मालूम हुआ। उस समय हमें अपने प्राणों की ओर से एकदम निराशा हो गई। और मज़ा यह कि कमबख्त दिखाई भी नहीं पड़ रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि धीरे-धीरे डालियाँ और पत्थर हटा रहा था। इस कार्यवाही के शुरू होने के साथ ही दोनों तेंदुए ग़ायब से हो गये। एक तो सामने टेकरी पर खाँ साहब ने बैठा देख लिया पर दूसरा न दिखाई पड़ा।

इतने में फिर पत्थर हटाने और डालियाँ तोड़ने की कार्यवाही शुरू हुई और फिर रुक गई। यहाँ हम लोग यह सोचने लगे कि क्यों न पीछे की ओर से काँटे आदि हटाकर हम स्वयं भाग जायँ। अब यह आशंका भी थी कि रास्ता बनाने में कहीं ब्लैक-बोर्ड ही न सिर पर आ रहे। इधर हम यह कार्यवाही कर रहे थे और उधर दूसरी ओर तेंदुए ने सचमुच हमारे क़िले की झाड़ियाँ तथा पत्थर खोदना शुरू कर दिया। उसके पंजों तथा झाड़ियों के सरकने की आवाज़ मानो कान में घुसी जाती थी। अब खाँ साहब के होश भी जाते रहे। इधर हमने देखा कि तेंदुआ सामने से घुसा आता है तो अपनी कार्यवाही तेज़ की। उधर खाँ साहब ने भय-मिश्रित स्वर में साँप की-सी फुसकार मार कर कहा—'अरे वह··· ''घूम कर झुक कर जो मैंने और मास्टर साहब ने देखा तो अँधेरे में सचमुच दो आँखें चमक रही थीं। "वह आ गया···!' खाँ साहब ने घबरा कर कहा—"अरे ···बन्दूक़·····अरे····रे···"मैंने अपनी बन्दूक़ न दी। स्वयं

सँभल गया। मामला नाज़ुक था। झाड़ियों की खड़खड़ाहट में उधर वह बढ़ रहा था। इधर हम जो निकलने का रास्ता कर रहे थे तो ब्लैक-बोर्ड की पत्थर की टाँग ग़ायब। अब मास्टर साहब ब्लैक बोर्ड को रोकते हुए बोले—"अरे गिरा ·· अरे रोको ·· रोको···"और उधर यह हाल कि ख़ाँ साहब की छाती ही पर जब तेंदुआ चढ़ा आ रहा था तो वे क्या करते ? उन्होंने अपनी गज़ फँसी बन्दूक़ जैसे भी थी वैसे ही एक नारे के साथ दाग दी। और उछले जो वे तो मैं भी जान पर खेल कर भागा। मास्टर भी बोर्ड को छोड़-छाड़ भागा। इधर बन्दूक़ का धमाका, हमारी भयानक चीखें और बोर्ड का गिरना। फाँद फूँदकर मैं और मास्टर दोनों जो भागे हैं अँधेरे में सिर पर पाँव रखकर तो गिरते-पड़ते भागाभाग बिना घूमकर देखे हुए ऐसे भागे कि गाँव के किनारे आकर दम लिया। होश उड़े हुए थे। देखते जो हैं तो ख़ाँ साहब नदारद। मैंने मास्टर से और मास्टर ने मुझसे ख़ाँ साहब को पूछा। मालूम हुआ कि वे रह गए। लोगों को आवाज़ दी। दो-एक आदमी आये और हम सब ज़मींदार साहब के यहाँ पहुँचे। यह समाचार सुनते ही सब के पैरों तले से ज़मीन निकल गई। सुबह हो ही रही थी। कोई पचास आदमी लट्ठ लेकर एकत्र हो गए और तुरन्त ख़ाँ साहब की खोज में बड़ी तेज़ी से रवाना हुए।

[७]

मौक़े पर पहुँचे। दूर ही से पहिले ग़ौर से देखा। पौ फट

रही थी। तेंदुए का कहीं नाम नहीं था। हाँ हमारा ब्लैक-बोर्डों का क़िला गिर पड़ा था। पास जाने पर विचित्र दृश्य दिखाई पड़ा। ख़ां साहब पहिले तो दिखाई न पड़े। फिर जो देखा तो टूटे हुए ब्लैक-बोर्ड और झाड़ियों के नीचे बड़े ही सुरक्षित ढंग से दबे हुए सचमुच गहरी निद्रा में मग्न थे। बन्दूक़ पास ही पड़ी थी और झाड़ी के निकट एक खजीला गीदड़ पड़ा हुआ था। देखने से पता चला कि गीदड़ के सिर में गोली लगी है। ख़ाँ साहब की बन्दूक़ की नाल फट गई थी। गज़ कुछ दूर पर पड़ा था। ख़ाँ साहब सचमुच जीवित थे और ब्लैक-बोर्ड हटाया गया तो गालियाँ बकते हुए उठ बैठे। वास्तव में बेहोश हो गए होंगे। और इसी के साथ ही साथ शायद नींद भी आ गई होगी। मालूम हुआ कि चोट वैसे तो सब जगह लगी पर कोई चोट उल्लेख के योग्य नहीं सिवाय एक नाक की चोट के। वह भी इस तरह कि ऐनक, जिसमें जगह-जगह गूदड़ बँधा था उसकी नाक पर की कमानी वहीं की वहीं नाक में धँस गई थी। ऐसा लगता था मानो किसी ने बड़े ही गोठिल और बिना धार के यंत्र से नाक काटने की सर्वथा असफल चेष्टा की है।

ख़ैर। जो कुछ हुआ सो हुआ पर यह अब तक समझ में न आया कि तेंदुए का गीदड़ कैसे बन गया।

भाग गई

मुंशी फ़रासतअली ने एक ग़रीब घर में जन्म लिया, परन्तु अपनी मेहनत से धनवान बन गये। दूसरे भाई अहमदअली ने कुछ न किया। जो कमाया वह उड़ाया। हमेशा ग़रीब के ग़रीब रहे। ख़ुदा की क़ुदरत कि लड़का हुआ तो वह भी ऐसा ही हुआ। मुंशी फ़रासतअली का अपना परिवार बिलकुल छोटा था। एक बीबी, एक लड़की और ख़ुद। घर पर एक से दो होने के लिए अपने एक दूर के सम्बन्धी के लड़के को, जो अनाथ था, लड़की को क़ुरान और फ़ारसी पढ़ाने को रख लिया था।

आयशा पर ख़ुदा ने साल-भर के अन्दर ही ऐसी मुसीबत डाली कि किसी पर न पड़े। माँ बीमार पड़ी और दस दिन में चल बसी। तीन-चार महीने बाद मुंशी फ़रासतअली की पुरानी शिकायत अर्थात् दमा की बीमारी ने ऐसा ज़ोर बाँधा कि ज्यों-ज्यों दवा दी गई त्यों-त्यों मरज़ बढ़ता ही गया। चार-पाँच महीने में वह भी गुज़र गए। जायदाद वग़ैरः जो कुछ भी था वह भाई और लड़की के हिस्से में आयी। लड़की का संरक्षक अब सिवाय चाचा के और कोई न था। चाचा के घर पर पहुँचकर उसने और ही रङ्ग देखा। चाचा का लड़का जवान था। तहसील में चपरासी था। मगर हाल यह था कि कुछ समय से बेकार था, क्योंकि वहाँ

से बरखास्त हो चुका था। बीबी को मार-मारकर वह बुरा हाल किया कि बेचारी अपने बाप के घर चली गई।

जब कभी आती, अकारण पीटी जाती। शराब की भी आदत थी और प्रायः रात के ग्यारह-बारह बजे से पहले घर में न आता था। बाप बेचारा खुद परेशान था कि क्या करूँ। एकलौता बेटा था। बेचारा जो कुछ कमाकर लाता बीबी को दे देता। लड़के का यह हाल, कि माँ से सब कुछ ले लेता। गरज़ कि आयशा ने घर की वह दशा देखी, जो कभी सुनने में न आई थी। घर का काम करते-करते वह थक जाती थी, मगर फिर भी चाची नाराज़ ही रहतीं। जब से वह आई, उसको पैसा-कौड़ी कभी कुछ न मिला। बाप के समय के कपड़े फटने को आये, मगर चाचा और चाची ने कुछ भी ध्यान न दिया।

एक रोज़ रात के ग्यारह बजे जब वह सो रही थी, उसकी चाची ने उसको जगाया और आवाज़ देकर कहा—"उठकर खाना दे दो।" वह समझ गई कि मियाँ फ़ारूक़अली आ पहुँचे। खाना लेकर गई, तो बेहद ख़फ़ा हुए कि ठण्ढा है। दौड़ी हुई बेचारी रसोई में गई। आग जलाई और उस शराबी के लिए खाना गरम किया। खाना गरम करके सामने रखा और पीने के लिए ठण्ढा पानी भी लाकर थाली के पास रख दिया। खाना कुछ अच्छा पका हुआ था और मियाँ फ़ारूक़ उस वक्त तरङ्ग में थे। कहने लगे—"आयशा, यह खाना किसने पकाया है?"

आयशा ने कहा—"मैंने ही पकाया है।"

फ़ारूक़ ने धीरे से कहा—"तब तो तुम बड़ी होशियार लड़की हो। मैं दूसरी शादी तुम्हारे साथ ही करूँगा।"

आयशा अब पन्द्रह वर्ष की हो चुकी थी। उसने इस प्रकार की बातें भला कब सुनी थीं। एक सन्नाटे में आ गई। बदन से पसीना जारी हो गया। फ़ौरन वहाँ से सीधी अपने पलङ्ग पर पहुँची। रोते-रोते सो गई। सोते समय उसने एक भयङ्कर स्वप्न देखा कि एक बला उसकी ओर पञ्जा फैलाकर बढ़ रही है, उसकी आकृति मकड़ी की सी है, परन्तु शरीर हाथी की भाँति विशाल है और मुँह बिल्कुल फ़ारूक़ जैसा। डरकर नींद ही में वह ज़ोर से चीख़ पड़ी। चाची ने घबराकर पुकारा—"आयशा क्या है?" आयशा ने कहा—"कुछ नहीं। मैं ख्वाब देख रही थी। इसीसे डर गई।"

आयशा को फ़ारूक़ की सूरत से नफ़रत हो गई थी। वह उससे इस तरह डरती थी जैसे क़साई से गाय।

रिश्तेदारी में एक मौत हो गई थी और आयशा की चाची को वहाँ जाना था। चाचा खाना खाकर कचहरी चले गए। चाची ने कहा—"मैं तुमको नहीं ले जा सकती, क्योंकि तुम्हारे पैर में न ठीक जूता है और न पहनने को ठीक कपड़े। तुम घर पर ही रहो। फ़ारूक़ आये, तो खाना खिला देना।"

यह सुनते ही आयशा का दम निकल गया। उसने दबी

ज़बान से कुछ कहना चाहा, मगर चाची ने डपटकर कहा—"नहीं मैं तुम्हें नहीं ले जाऊँगी।"

चाची के चले जाने के बाद आयशा की अजीब हालत थी। दरवाज़े की ओर आहट सुनती और सहम जाती, उसका डर के मारे बुरा हाल था। बारह बज गए और एक बजने को आया, मगर फ़ारूक़ का पता न था। वह बहुत खुश थी कि फ़ारूक़ आज न आयेगा, क्योंकि अक्सर ऐसा भी होता था कि सुबह का गया हुआ बस रात के बारह बजे ही आता था। उसको कुछ हद तक विश्वास हो चला था, लेकिन फिर भी उसने खाना लाकर ढङ्ग से तख्त पर रख दिया। पीने का पानी और गिलास भी पास रख दिया, ताकि अगर वह कहीं आ जाय तो सब चीज़ें मौजूद पाये और उसे (आयशा को) सामने न जाना पड़े।

दिल में आयशा ने कहा—"आज वह नहीं आयेगा।" उठी और हाथ-मुँह धोकर अपनी कोठरी में नमाज़ पढ़ने लगी। नमाज़ पढ़ते समय उसको शक हुआ कि दरवाज़े पर कुछ आहट-सी हुई। किन्तु यह केवल भ्रम था। इन्तज़ार करने के बाद उसने फिर नमाज़ पढ़नी शुरू कर दी। वह नमाज़ पढ़ ही रही थी कि पीछे से फ़ारूक़ की आवाज़ आई—"कब तक नमाज़ पढ़ती रहोगी?" यह आवाज़ गोया एक मुसीबत थी। आयशा को नमाज़ पढ़ना मुश्किल हो गया। उसको ऐसा मालूम होता था कि बस अब किसी बला ने पीछे से पकड़ा। ज्यों-त्यों करके

नमाज़ ख़त्म की। पीछे मुड़कर देखा तो फ़ारूक़ के चेहरे पर एक अजीब राक्षसी मुस्कराहट थी। आयशा ने दिल को मज़बूत किया और नरमी से कहा—"आपका खाना वहाँ तख्त पर रखा है।"

फ़ारूक़ ने हँसकर कहा—"यह तो मैं भी जानता हूँ। मगर जब तक तुम खुद पहुँच कर न खिलाओगी, मैं कैसे खाऊँगा?"

आयशा परेशान हो गई और सिटपिटा गई। वह फ़ारूक़ से कुछ न कह सकती थी। उसको ऐसा अनुमान हुआ कि वह डर से बेहोश होनेवाली है। वह कुछ कहने ही वाली थी, कि फ़ारूक़ ने फिर कहा—"तुम तो बड़ी अच्छी लड़की हो। ज़रा बाहर निकलो। कम से कम खाना तो गरम ही कर दो।"

आयशा चुपचाप कोठरी से निकली और दीवार से लगी लगी—ताकि फ़ारूक़ से काफ़ी फ़ासला रहे—बाहर निकल गई और खाना गरम कर लाई। फ़ारूक़ ने खाते समय फिर खाने की तारीफ़ करनी शुरू की, मगर आयशा दूर बैठी रही और उसका जवाब तो जवाब, मुँह तक मोड़ कर न देखा। खाना खाने के बाद फ़ारूक़ ने आवाज़ देकर कहा—"पान तो लाओ।"

आयशा ने कहा—"पान मैंने पहले ही बना कर रख दिया है।" फ़ारूक़ ने फिर शरारत से कहा—"यह तो मुझे भी मालूम है कि एक सूखा पान बना हुआ रखा है। मगर मैं तो ताज़ा पान खाऊँगा।"

आयशा पर फिर बिजली सी गिरी, मगर उठी और पान लगा कर लाई। बजाय फ़ारूक़ के हाथ में देने के उसने बाएँ हाथ से पान की तश्तरी उठानी चाही ताकि पान रखने के लिए उसको ज़्यादा न झुकना पड़े। एकदम से फ़ारूक़ ने बायाँ हाथ पकड़ लिया और मुँह फैला कर कहा—"पान मेरे मुँह में रख दो।"

आयशा ने पान वाला हाथ पीछे कर लिया और रोकर कहा—"छोड़ दीजिये।" उसकी अजीब हालत थी। मगर अब बजाय डर के उसे ग़ुस्सा आ रहा था। बहुत कुछ उसने ज़ोर लगाया मगर फ़ारूक़ के फ़ौलादी पञ्जे से छुटकारा नामुमकिन था। वह हँस-हँस कर कह रहा था, "देखें भी इस लड़की में कितना ज़ोर है।" यह कहना और भी फोड़े का काम था। लाचार होकर बेचारी ज़मीन पर बैठ गई और मुँह छिपा कर रोने लगी। पीछे से जो हाथ आगे आया तो पान बदस्तूर उसके हाथ में था। मुँह ढका हुआ था। फ़ारूक़ ने चुपके से मुँह बढ़ा कर पान दाँत से पकड़ लिया। एकदम आयशा ने घबरा कर पान को इस तरह छोड़ा जैसे कि कोई कीड़ा-मकोड़ा उठा लेता है और फिर घबरा कर छोड़ देता है। फ़ारूक़ ने पान को मुँह में सँभालते हुए कहा—"अच्छा अब मैं तुमको छोड़ देता हूँ मगर एक बात सुन लो।" आयशा सिसकियाँ लेकर रो रही थी और कुछ उत्तर न देती थी। बड़ी मुश्किल से आयशा ने आँखें चार कीं और रोकर कहा—आप मुझे क्यों परेशान करते हैं?"

फ़ारूक़ ने कहा—"तुम मेरी बात सुन लो। मैं तुमको छोड़े देता हूँ।" आयशा ने आँसू पोंछ साहस बटोर कर कहा—"कहिए! क्या कहते हैं?" फ़ारूक़ ने मुस्करा कर कहा—"तुम बताओ तो सही मैं कैसा हूँ। तुम मुझसे शादी करने पर रज़ामन्द हो?"

आयशा का सारा शरीर क्रोध से काँपने लगा। अब भागने के बजाय उसे और अधिक क्रोध आ रहा था। मुँह क्रोध से लाल हो गया। भर्राई हुई आवाज में उसने कहा—"आप मुझसे इस तरह की बातें क्यों करते हैं?"

फ़ारूक़ ने तुरन्त उत्तर दिया—"इसलिए कि अब माँ ने तै कर लिया है कि मेरी शादी तुम्हारे साथ हो जाय।" आयशा ने ज़ोर से हाथ को झटका दिया और छुड़ा कर भागी।

अपनी कोठरी की तरफ़ दौड़ी, मगर फ़ारूक़ भला उसको कब छोड़ने वाला था। "यह क्या बदतमीज़ी?" ग़ज़बनाक होकर फ़ारूक़ ने कहा—तड़प कर वह उठा मगर चारपाई की रस्सी में पाँव उलझ जाने से मुँह के बल गिरा। इतने में आयशा अपनी कोठरी में थी और चाहती थी कि दर्वाज़ा बन्द करे कि फ़ारूक़ आ पहुँचा और दर्वाज़े को ज़ोर से धक्का दिया। मगर आयशा में उस वक्त बला की ताक़त आ गई थी। उसने भी खूब ज़ोर लगाया। दर्वाज़ा खुला जाता था कि उसने एक ईंट का टुकड़ा उठा कर इस बेदर्दी से फ़ारूक़ की उँगलियों पर मारा कि वह तड़प गया। आयशा ने दर्वाज़ा बन्द कर लिया। फ़ारूक़

बाहर खड़ा हुआ बल खा रहा था। अब उसने गालियाँ देनी शुरू की और कहा—"इसका मज़ा शादी के बाद तुझको चखाऊँगा।" आयशा उसकी बदज़बानी सुन कर सहम गई, क्योंकि वह बिलकुल ऐसी गालियाँ दे रहा था जैसे वह अपनी बीवी को दिया करता था।

[२]

इस घटना के बाद आयशा को फ़ारूक़ ऐसी नज़रों से देखता था कि बस खा जायगा। उसकी उँगलियाँ दो महीने तक दुखा की और मरहम-पट्टी हुआ की, क्योंकि उँगली की हड्डी कुचल गई थी।

इस दौरान में आयशा को इस ख़बर की तस्दीक़ हुई जो उसने फ़ारूक़ की ज़बानी सुनी थी। एक दिन उसने अपनी कोठरी में से चाचा और चाची की बातें सुन लीं। चाचा की यह मरज़ी थी कि फ़ारूक़ के साथ आयशा की शादी जल्द कर दी जाय। इस तरह से गुज़रे हुए भाई की सारी जायदाद कब्ज़े में आ जायगी। यह भी तजवीज़ थी की पहली बीवी को फ़ारूक़ तलाक़ दे दे।

उस दिन से आयशा का बुरा हाल था। वह दिन-रात इसी चिन्ता में रहती थी कि आख़िर अब क्या होगा? एक चाचा और चाची के अतिरिक्त, उसका इस संसार में कोई न था। चाचा और चाची की बातों को सुन कर मालूम हुआ कि मामा को भी उसकी इस शादी के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं है।

दिन और रात अब आयशा यही दुआएं माँगती थी कि "या खुदा ! तू मुझे जल्द मौत दे।"

मौत की तो बात ही क्या, उसको छींक तक न आती थी। कुछ समय से चाची का रुख भी बदला हुआ था। चाची अब बजाय सख्ती के नरमी से बातें करती थीं। बात-बात पर चुमकारती थीं। कपड़े भी अब ढङ्ग के हो गए थे। मगर यहाँ आयशा की हालत ही अजीब थी। उसको चाची का वह सख्त बर्ताव याद था और कहती थी कि—"काश, अब भी वहां जारी रहता।" फटे और पुराने कपड़े मञ्जूर थे, लेकिन अच्छे कपड़े इस शर्त पर क़तई नामञ्जूर थे। आधी-आधी रात इसी उधेड़-बुन में गुज़र जाती थी कि खुदा ! आखिर क्या होगा, और क्यों कर इस आने वाली मुसीबत से जान बचेगी ?

मगर आने वाली मुसीबत तेज़ी से उसकी ओर बढ़ रही थी। वह वक्त भी धीरे-धीरे क़रीब आगया कि उसको अपने ब्याह के कपड़े खुद ही सीने पड़े। उठते-बैठते दिखावटी मोहब्बत में चाची के मुँह से जो शब्द निकल जाते थे, वह तीर होकर आयशा के लगते थे और अपनी कोठरी में जाकर वह घण्टों रोती थी। मगर यह सब व्यर्थ था। ब्याह की तैय्यारियाँ बराबर हो रही थीं। फ़ारूक़ ने पहली बीबी को तलाक़ भी दे दी थी। चाची उसको अब फ़ारूक़ के सामने भी नहीं आने देती थीं। मगर आयशा इससे खुश न थी।

इसी बीच एक दिन ऐसा मौक़ा आ गया कि फ़ारूक़ को

आयशा के साथ अकेले में बात करने का मौक़ा मिल गया। उस कीनावर शैतान ने दाँत पीस कर कहा, "अब तुझको तेरी शरारत का मज़ा चखाऊँगा। बजाय इसके कि आयशा खामोश रहती उसने भी जल कर कहा, "वह दिन आने से पहले ही मैं इस दुनियाँ में न रहूँगी। मुझको तुम्हारी सूरत से नफ़रत है।" इससे आगे बात न हो सकी क्योंकि माँ के पैरों की आहट सुनकर फ़ारूक़ हट गया। आखिर शादी की तारीख भी मुक़र्रर हो गई और दिन गिने जाने लगे। आयशा की न तो कोई सहेली थी और न हमजोली, और यह भी अच्छा ही हुआ। एक-एक दिन करके आखिर समय बीता और वह दिन आया कि गाने-बजाने की आवाज़ ने घर को सर पर उठा लिया। सारा घर मेहमानों से भर गया। आयशा अपनी कोठरी में दुलहिन बनी बैठी थी। उसने चार दिन से कुछ भी न खाया था और दिन-रात रोया करती थी।

निकाह वाले दिन उसका अजीब हाल था। उसने एक पुड़िया में शीशा पीस कर रखा था कि खाकर प्राण तज दूँगी, मगर ऐन वक्त पर वह पुड़िया ऐसी खोई कि न मिली। उसकी आँखों में दुनिया अब अँधेरी थी। रात के ग्यारह या बारह बजे होंगे वह एकदम से उठी; कुछ लोगों को ग़ाफ़िल पाया और कुछ लोगों को लापरवाह। वह सीधे पाखाने में पहुँची और न जाने किस मुश्किल से दीवार पर चढ़ कर अपने को उस तरफ़ गिरा दिया। दीवार कुछ ऊँची न थी इसलिए उसके हलकी-

सी चोट लगी। वह उठी और उसने चादर को सँभाल कर ओढ़ा। उसको पता था कि मोहल्ले में फलाँ तरफ़ कुआँ है। वह सीधी उसी ओर चली; मगर कुएं पर आदमी थे। अब उसकी यह हालत थी कि क़दम न उठता था। मर्दों को दूर ही से देख कर सहमी जाती थी, क्योंकि वह जानती कि अगर पकड़ी गई तो क्या हश्र होगा। सामने से आते हुए मर्द से बचने के लिए वह एक गली में मुड़ी और सीधी चली गई। ख़ुश-क़िस्मती से एक मकान से एक बुढ़िया निकली और वह भी उसी तरफ़ चली, जिधर आयशा जा रही थी।

बुढ़िया ने यों ही पूछा—"बेटी, कहाँ जा रही हो?"

आयशा ने ज़रा घबरा कर कहा—"तुम कहाँ जा रही हो?"

बुढ़िया ने कहा—"बेटी, मैं तो खारीकुईं जा रही हूँ।" फ़ौरन ही आयशा को याद आया कि सद्दीक़हुसेन का मकान भी खारीकुईं पर है। यह सद्दीक़हुसेन वही लड़का था, जो आयशा को क़ुरान पढ़ाया करता था और जिसको अनाथ समझ कर आयशा के बाप ने अपने घर रख लिया था। आजकल उसने अपने मोहल्ले में एक मकतब खोल लिया था, जिसमें वह मोहल्ले के लड़कों को उर्दू, फ़ारसी वग़ैरह पढ़ाया करता था। आयशा को याद हो आया कि सद्दीक़ तो बहुत अच्छा लड़का था। शायद वह मेरी मदद करे। इस ख़याल के आते ही बग़ैर सोचे-समझे बुढ़िया से कह दिया—"मैं भी वहीं जा रही हूँ।"

बुढ़िया ने पूछा—"वहाँ कहाँ जा रही हो ?" आयशा ने ज़रा रुकते हुए कहा—"क्या तुम मौलवी सद्दीक़ का घर जानती हो ?" बुढ़िया ने कहा—"हाँ, मैं जानती हूँ। उनके यहाँ तो कोई औरत ही नहीं है। वह अकेले हैं।'

आयशा ने कहा—"हाँ ! वह अकेले हैं मगर वह मेरे रिश्तेदार हैं और मेरी माँ आज वहाँ गई हैं। तुम मुझको उनका मकान बता देना तो मुझे दिक़्क़त न होगी।"

[:]

आयशा थोड़ी देर तक तो दर्वाज़े की कुण्डी पकड़े खड़ी रही। गली में सन्नाटा था। उसने हिम्मत करके कुण्डी खटखटाई। थोड़ी देर की कोशिश के बाद एक मौलवी सूरत का नौजवान शख्स एक चिराग़ लिए हुए आयशा की तरफ़ अजीब तरह देख रहा था।

"तुम कौन हो ? तुम कौन हो ?" उसने परेशान होकर आयशा से पूछा। मगर आयशा ने बजाय जवाब देने के, दर्वाज़े पर पैर रखा। सद्दीक़ एक तरफ़ को हो गया और चादर में लपटी हुई आयशा मकान के अन्दर दाख़िल हो गई। वह सीधी बरामदे में पहुँच कर चारपाई पर बैठ गई। मौलवी का अजीब हाल था। उसका मुँह खुला का खुला रह गया और जहाँ खड़ा था वहीं खड़ा रह गया। अब उसकी हिम्मत न पड़ती थी कि अन्दर आये। मगर आयशा ने आवाज़ देकर कहा— "आप अन्दर आ जाइये।" उसने अब भी नहीं पहचाना कि कौन है।

पास आकर खम्भे की आड़ में वह खड़ा हो गया और उसने चिराग़ रख दिया। दोनों तरफ़ ख़ामोशी रही, लेकिन सद्दीक़ ने फिर पूछा—"तुम कौन हो? मुझको जल्द बताओ। मैं सख्त परेशान हूँ।"

आयशा ने दबी ज़बान से कहा—"सद्दीक़! तुम मुझको भूल गये। मैं बदनसीब आयशा हूँ।" "अरे! यह तुम हो?" यह कह कर सद्दीक़ फिर चुप रह गया। लेकिन बोला—"मगर आज तो···आख़िर यह बात क्या है? कुछ तो कहो।"

आयशा ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—"सद्दीक़! मैं तुम्हारे घर में पनाह लेने आई हूँ।" यह कह कर रो-रोकर उसने सारा क़िस्सा शुरू से आख़िर तक सुना डाला। सद्दीक़, बजाय इसके कि पनाह और इमदाद का वादा करता, उसको नसीहत करने लगा। मगर आयशा की आहोज़ारी और परेशानी अब इस हद पर पहुँच गई थी कि अब वह हर मुसीबत के लिए तैयार थी। उसने अपने को सद्दीक़ के क़दमों पर डाल दिया और घबरा कर कहा—"मेरी मदद करो।" सद्दीक़ घबरा गया। उसको आयशा के बाप ने बेटे की तरह रखा था। उसकी आँखों से भी आँसू जारी हो गये और उसने आयशा से कहा—"मैं ग़रीब तुम्हारी किस तरह से मदद कर सकता हूँ; मगर मैं हर तरह तैयार हूँ।"

आयशा ने फिर हाथ जोड़कर कहा, "अच्छा जो तुम मेरी मदद पर तैयार हो तो मेरी मदद करो·····मैं उम्र भर तुम्हारी

ज़र-ख़रीद लौंडी की तरह ख़िदमत करूँगी। तुम ख़याल करोगे कि मैं बेहया हूँ, मगर मेरी बे-बसी और मुसीबत को····· देखो! तुम मेरे साथ खेले हो। तुमने मुझको पढ़ाया है। तुम्हीं मुझको इस मुसीबत से बचाओ।"

सद्दीक़ कुछ कहने को था कि आयशा ने फिर ज़ोर देकर कहा—"कल नहीं, बल्कि अभी-अभी सुबह होने से पहले, नहीं तो मेरी जान की ख़ैर नहीं है।"

गरज़ कि सद्दीक़ के हाथ-पाँव जोड़ कर आशा ने 'हाँ' कहला कर ही छोड़ा। सद्दीक़ मोहल्ले के एक बुज़ुर्ग के पास गया। उनसे सब हाल कह दिया और उनकी सलाह पर अमल किया।

रात ही रात, बल्कि उसी वक़्त, क़ाज़ी को बुला कर गवाहों की मौजूदगी में सद्दीक़ ने आयशा से निकाह कर लिया।

× × ×

ज़ाहिर ही है कि आयशा के घर क्या न कुछ हुल्लड़ हुआ होगा? अजीब तहलक़ा मचा! दूल्हा मियाँ, दूल्हा के बाप और तमाम दोस्त अहबाब व रिश्तेदार, सब के सब, परेशान और शरमिन्दा थे। एक अजीब ही मुआमला दरपेश था। नतीजा इसका, मुक़दमेबाज़ी हुई। फ़ैसला आयशा के हक़ में हुआ। उसके हिस्से की जायदाद उसको दिलाई गई। सद्दीक़ की क़िस्मत के दिन भी फिर गए। सौ, सवा सौ रुपया माहवार आमदनी की जायदाद बीबी को मिली और चैन से ज़िन्दगी बसर होने लगी।

हालाँकि आयशा ख़ुश थी. मगर दुनिया यही कहती थी, "बे-हया भाग गई !"

तमाम नातेदार, रिश्तेदार हमेशा के लिए छूट गए। कोई उसका रखवार नहीं, कि उसको अपने यहाँ बुलाए या उसके यहाँ जाय। वह अच्छी बीबी है, तो हुआ करे। उसकी वजह से ख़ानदान की नाक कट गई और इज़्ज़त ख़ाक में मिल गई ! अब ख़ुद इन्साफ़ कीजिए और ग़ौर फ़रमाइए। यह नापाक जुम्ला 'बे-हया भाग गई' कहां तक दुरुस्त है ?

पट्टी

पट्टियां एक तो वे होती हैं, जो चारपाइयों में लगाई जाती हैं, और एक वे जो सिपाहियों के पैरों पर बांधी जाती हैं। फिर और भी अनेक प्रकार की पट्टियां होती हैं। किन्तु मेरा मतलब यहां उस पट्टी से है जो फोड़ा-फुंसी या इसी प्रकार की कोई मुसीबत आने पर डॉक्टरों के द्वारा बाँधी जाती हैं।

... ...

मेरी पत्नी की मिलनेवालियों में एक लेडी डॉक्टर थीं। मैं छुट्टियों में ससुराल जाने वाला था, और मिस रोमा ने मुझसे कह दिया था कि जिस दिन तुम जाओ, मुझसे ज़रूर मिल लेना। अतएव मैं सुबह-तड़के ही मिस साहिबा के बँगले पर पहुँचा।

इसके पहले कि मैं यह बताऊँ कि बँगले पर क्या हुआ, एक-दो बातें कुछ कुत्तों के विषय में भी कहना चाहता हूँ। वे छोटे-छोटे कुत्ते, जो सुन्दर कहे जाते हैं, और बंगलों के निवासी जिन्हें पालना परम धर्म समझते हैं, वे नालायक़ कुत्ते चाहे कटखने न हों, किन्तु इधर आपने बँगले में प्रवेश किया, और उधर वे सीधे आपके ऊपर ! देखने में काट खाने के ही लिये, किन्तु वास्तव में आपको दौड़ा कर और गिरा कर चित करने के उद्देश्य से निकलते हैं। अतएव आप विश्वास करें कि यही हुआ। मिस

रोमा के तीन छोटे-छोटे कुत्ते इस बुरी तरह मेरे ऊपर झपटे कि मेरे होश जाते रहे। गुलाब के एक कांटों-भरे पौधे पर मैंने इस प्रकार पांव रख दिया जैसे कोई रेशमी गद्दों पर रखता है। यहां से फंस कर बदहवासी के साथ गमले फांदे। एक फांद गया, दो फांदे गया, तीसरे में ऐसा पैर लगा कि मुंह के बल गिरा, और साथ ही कुत्ते सिर पर! अब क्या बताऊँ जनाब, कि किस तरह फुर्ती से फिर उठा ही था कि कुत्तों ने ऐसी टांग ली कि एक कुत्ते पर पांव पड़ गया और अबकी सड़क पर गिरा। वहां से घबरा कर सीधा उठ कर बरामदे में आया। कुत्ते पीछे-पीछे थे। चिक उठाने का समय कहां था। चिक सहित तोप के गोले की भांति ज़ोर से कमरे में घुसा। उधर से मिस साहिबा बदहवासी के साथ चिल्लाती आ रही थी। मैं इस बुरी तरह मिस साहिबा से जा टकराया कि वह कुरसी पर चीख मार कर गिरीं। मैंने सहारा देकर जल्दी से उठाया। कुत्ते खड़े अब दुम हिला रहे थे! वही दुष्ट जो क्षण भर पहले मेरी जान लेने को तैयार थे।

... ...

जब ज़रा होश ठिकाने हुये, तो हम दोनों ने बातें करना शुरू कीं। मिस साहिबा ने अपनी सहेली से मिलने की इच्छा प्रकट की। कुछ और व्यर्थ की बातें कीं। इतने में उनकी दृष्टि मेरे हाथ पर पड़ गई, जो अँगूठे की जड़ के पास में सड़क पर गिरने के कारण रगड़ खाने से कुछ छिल गया था।

"ओह! यह क्या।" यह कह कर आपने उस साधारण

से घाव का निरीक्षण करते हुये कहा—"मैं अभी इसे लोशन से धोकर 'ड्रेसिंग' किये देती हूँ।"

मैंने कहा—"अजी, रहने दीजिये! कोई बात भी हो।"

परेशान-सी सूरत बनाकर मिस साहिबा ने कहा—"मिर्ज़ा साहब, यह मामूली बात नहीं, इसका फौरन 'ड्रेसिङ्ग' करवाना चाहिये, नहीं तो कहीं···"

"नहीं तो कहीं···!" मैंने उनकी बात काटकर सवाल किया—"नहीं तो क्या?"

भवें चढ़ाकर, कुछ भयभीत सूरत बनाकर मिस साहिबा ने कहा—"टिट निस।"

"टिट-निस।" यह मेरे लिये बिलकुल नया शब्द था। सहसा खयाल आया कि यह शैक्सपियर की टटानिया के कहीं भाई-बन्द तो नहीं। अतएव मैंने विवरण पूछा। पता चला कि यह एक रोग है, ज़हरबाद की भाँति। सड़क की साधारण रगड़ से सम्भव है कि खराश में ज़रा-सी जलन हो और रात ही रात में सूज जाय और सुबह होते-होते ज़हर फैल जाय और फिर··

मैं कुछ सिहर-सा गया। उस भयानक रोग के भयानक परिणाम की कल्पना करता जाता था और मिस रोमा की कोमल-अँगुलियों से पट्टी बंधवाता जाता था। बंगले से जब निकला हूँ, तो मेरी हुलिया यह थी कि गले में एक झूला पड़ा हुआ था और उसमें जकड़-बन्द किया हुआ हाथ था। कुशल हुई कि

ताँगे पर आया था, कहीं साइकिल पर आता तो और भी कठिनाई होती।

... ...

मार्ग में एक जान-पहिचानवाले मिले। सलाम के साथ ही उन्होंने ताँगा रुकवाया।

"अरे म्याँ, यह क्या? खैरियत तो है?" उन्होंने सवाल किया।

मैंने इसके उत्तर में क़िस्सा सुनाया कि जनाब, सड़क पर रगड़ लग गई और इस डर से कि कहीं टेटनिस न हो जाय, यह कार्यवाही की गई है।

"लाहौल विला कुवत!" उन्होंने ज़ोर से ठहाका लगाया, और टेटनिस की सम्भावना पर धिक्कार भेजी, ख़ूब हँसे और बोले—"पट्टी खोल-खाल के फेंको और उसकी जगह सेंदूर और तेल रगड़ कर लगा लो।"

इसके बाद एक साहब और मिले। उन्होंने भी ताँगा रुकवाया। वही बातचीत। और उन्होंने भी टेटनिस पर धिक्कार भेजी, ख़ूब हँसे और मज़ाक़ उड़ाया। कहने लगे—"टूटे हुये घड़े की मिट्टी रगड़ कर नीम की छाल के साथ लगा लो।"

सारांश यह कि रास्ते में चार आदमी और मिले। सब के सब टेटनिस को बुरा-भला कहते, और मुझ पर हँसते। किसी ने काली मिर्चें बताईं, किसी ने सन्दल बताया, किसी ने कहा कि कुछ बाँधने-बूँधने की कोई ज़रूरत नहीं, यों ही सूख जायगा।

घर पहुँचा तो पिताजी ने पट्टी बाँधने का कारण और विवरण पूछा। माताजी ने पूछा: भाई बहिनों ने पूछा। गरज़, सब को हाल बताना पड़ा। फिर नौकरों की पारी आई। घर की बूढ़ी नौकरानी ने हमदर्दी से सुनी-सुनाई बात की तफ़सील पूछी कि—"बेटा, यह "टिन टस" क्या है जो तुम्हारे दुश्मनों को होने का डर है। बड़ी बी ने जब लड़कों से सुना था तो टेटनिस को शायद तरकारी की क़िस्म की कोई चीज़ समझी थीं। जिस प्रकार हो सका, मैंने उनको भी समझाया।

इतने में बाहर एक मिलने वाले आ गये। उनसे किसी ने सुनी-सुनाई उड़ा दी थी। बहुत परेशान थे। उन्होंने हमदर्दी ज़ाहिर करते हुये विवरण पूछा; जो बताना पड़ा। वह चले गये, और खरबूज़ेवाला आया। वह नित्य का आने वाला था। बिना पूछे कैसे रह जाता। मैंने कह कर टालना चाहा कि चोट लग गई है कि एक नौकर बोल उठा—" 'टेटिस' हो गया है।"

इधर मैंने लौंडे की ओर घूर कर देखा. उधर खरबूज़ेवाला चकराकर बोला—"मियाँ, यह "टेटिस" क्या ? क्या कोई फुड़िया का नाम डाक्टरों ने रक्खा है।"

मैंने जल कर कहा—"बेहूदा मत बको !"

इससे छुट्टी पाई थी कि अन्दर गया, तो देखा कि माताजी दो-चार औरतों के सामने टेटनिस पर लेक्चर दे रही हैं। मैं पहुँचा तो मुझसे प्रार्थना की गई कि कुछ रोशनी डालूँ। अब मैं

तंग आ गया था और टेटनिस के नाम से मुझे क्रोध आता था। जैसे-जैसे करके बला टाली।

... ...

शाम को चार बजे की गाड़ी से रवाना होनेवाला था। इस बीच में लोगों ने मेरी बोलती बन्द कर दी। अब मैं सिर्फ़ यह कह कर टालना चाहता था कि चोट लग गई है। पर जनाब, पूछने-वाला बिना टेटनिस की बातचीत के काहे को मानता! वह तुरन्त कहता कि अमुक सज्जन से सुना। वह बताते थे कि टेटनिस होने की आशंका है। लाचार हो जिस प्रकार बन पड़ता, जान छुड़ाता।

ताँगा आया। असबाब लादा, तो ताँगेवाले ने भी पूछा कि—"मियाँ, हाथ में पट्टी कैसी है।" मैं झल्ला कर रह गया। स्टेशन पर तो मेरा नाक में दम आ गया। बहुतों को यह कह कर टाला कि चोट लग गई है, और बहुतों को कुछ मजबूर होकर टेटनिस का हाल बताना पड़ा।

गाड़ी छूटने के पहले ही एक साहब से इसी सिलसिले में झड़प हो गई।

"अरे मियाँ, यह हाथ में पट्टी कैसी है?" उन्होंने पूछा।

"मामूली चोट लग गई है।"

"कैसे लग गई?"

"सड़क पर गिर पड़ा था, चोट आ गई।"

"फिर कोई बात तो नहीं?"

"कोई बात नहीं।"

"मगर हमीद साहब मिले थे। वह कहते थे कि ख़ुदानाख्वास्ता टेटनिस हो जाने का डर है। यह टेटनिस क्या होता है?"

अब मुझे ऐसा ग़ुस्सा आया कि मन में आया कि मुँह नोच लूँ; क्योंकि वह मुझे सिर्फ़ तंग कर रहे थे। पहले तो आप सोचें कि उन्होंने शुरू से आख़िर तक व्यर्थ ही विवरण पूछा। यद्यपि हमीद साहब का वह अच्छी तरह दिमाग़ चाट चुके थे और फिर टेटनिस को पूछते हैं कि क्या होता है; यद्यपि ख़ूब अच्छी तरह पूछ चुके थे।

मैंने जल कर कहा—"टेटनिस एक तरह का बुख़ार होता है, जिसमें छींकें आती हैं।"

"हयँ!" वह बोले—"हमीद साहब, तो कहते थे कि ज़हर-बाद होता है।"

"माफ़ कीजियेगा!!' मैंने कहा—"तो फिर आप जब जानते हैं कि टेटनिस क्या बला है, तो मेरा दिमाग़ चाटने से क्या फ़ायदा?"

ज़ाहिर है कि इस प्रकार की बातचीत का परिणाम क्या हो सकता है। वह बुरा माने। मैंने और भी बुरा माना, जिससे वह और भी बुरा माने।

... .

मेरे डिब्बे में वैसे तो कई आदमी थे, परन्तु बिलकुल ही पास बैठनेवाले एक तो ज़मींदारों की-सी शक्ल के लखनऊ की तरफ़ के मुसलमान थे। एक और साहब कुछ फ़ौजीनुमा मालूम

हो रहे थे। खाकी क़मीज़ और नेकर पहने थे। उनके पास ही मेरे एक देशवासी अर्थात् मारवाड़ी महाजन बैठे थे। इनके अतिरिक्त दो-एक और साहब भी थे। गाड़ी चली और दो एक इधर-उधर की ज़बरदस्ती की बातें पूछ कर उन फ़ौजी साहब ने भी अन्त में पूछ ही लिया—"आपके हाथ में यह पट्टी कैसी बँधी है?"

मैं नहीं कह सकता कि मैं मन में कितना भन्नाया। लाचार हो कह दिया—"घाव हो गया है।"

"कैसे?" उन्होंने पूछा।

मारे ग़ुस्से के मैंने कहा—"बात दरअसल यह है कि मगर ने काट खाया है।"

"मगर ने? मगर...मगर ने काट खाया?"

"जी हाँ।" मैंने बेपरवाही से कहा।

"कैसे?" उन्होंने बड़ी उत्सुकता के साथ अब विवरण पूछना चाहा कि मैं बताऊँ कि किस तरह पानी या दलदल में मगर से मेरा सामना हुआ। पर मैंने तंग आकर अब दूसरी तरकीब सोची थी। अतः बड़ी गम्भीरता से मैंने कहा—"मुँह से काट खाया।"

"जी हाँ।" उन्होंने सिर हिलाते हुए कहा—"मुँह से तो काटा ही होगा। पर कहाँ पर आख़िर...!"

जहाँ चोट लगी थी और पट्टी बँधी थी, मैंने वह हिस्सा दूसरे हाथ से पकड़ कर कहा—"यहाँ पर काट खाया, और मुँह दबाकर काट खाया।" मुँह दबाने की हाथ से नक़ल करते हुए मैंने कहा।

"नहीं साहब !" वह दूसरे ज़मींदार साहब बोले—"इनका मतलब यह है कि वह कौन-सी जगह थी जहाँ मगर ने काट खाया, क्या घटना हुई थी ?"

मैंने उसी तरह रूखे स्वर में कहा—"मैंने कहा न, इसी जगह पर हथेली के पास।" मैंने फिर दोबारा जगह को पकड़ कर—"इसी जगह कमबख्त ने काट खाया। और कोई घटना तो हुई नहीं।"

कुछ खीज कर वे बोले—"अजी हज़रत, क़िस्सा सुनाइये, किस तरह कौन से दरिया में या ताल में ? क्या मामला पेश आया कि मगर ने आपकी हथेली में काट खाया ?"

"अब मैं समझा कि आपका क्या मतलब है।" मैंने कहा—"सुनिये, घटना असल में यह हुई कि हमारे पड़ोस में एक नदी है, वहाँ एक बड़ा-सा मगर रहता था। एक दिन मैंने कोई दस सेर का बहुत बड़ा मछली का काँटा बनवाया। उसे एक मोटे से तार के रस्से में बाँधकर पेड़ से बाँध दिया और काँटे पर माँस लगाकर नदी में डाल दिया। उसमें मगर रात के आठ बजकर तीन मिनट पर फँस गया।"

इस संक्षिप्त वर्णन को लोग भला काहे को पसन्द करते। चारों ओर से सवालों की बौछार होने लगी।

किसी ने पूछा—"साहब, काँटा कैसी नोक का था ?" किसी ने कहा, "क्या वह निगल गया ?" ग़रज़, तरह-तरह के सवाल किये गये और लाचार होकर मुझको मगर के शिकार की और

बातें सुनानी पड़ीं। इसके बाद मैंने जिस प्रकार भी सम्भव था, क़िस्से को कहानी का रङ्ग देकर बयान करना शुरू किया। और उस स्थल पर पहुँचा ही था कि दस-बारह आदमियों ने रस्सा खींचा है, और ज़ोर से तड़प कर मगर ने पलटा खाया ही है कि दूसरा स्टेशन आ गया। स्टेशन आने से मेरा क़िस्सा भला काहे को रुकता। परन्तु यहाँ यह मुसीबत आई कि एक महाशय कोई छकड़े-भर असबाब के साथ उसी डिब्बे पर झपट पड़े। इस तेज़ी के साथ उन्होंने और उनके नौकरों ने असबाब की फेंकाफेंक और ठूँसठाँस की कि सब को अपने-अपने बोरिया-बिस्तर और जगह की पड़ गई। ये महाशय शायद पुलिस-दारोग़ा थे और किसी दूसरे थाने पर बदली के सिलसिले में लद रहे थे। लम्बे-तगड़े जवान थे और उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें थीं। सामने ही दूसरों की जगह पर क़ब्ज़ा करके इधर-उधर सरका कर बैठ गये, और तुरन्त मुझे पान पेश किये। मेरा दुर्भाग्य कि मैंने धन्यवाद सहित पान को स्वीकार कर लिया। इसके बाद तुरन्त ही उन्होंने मौसम की शिकायत की। मैं जानता ही था कि अब ये मुझे छेड़ेंगे। अतः उन्होंने भी गोला दे मारा।

"क्यों जनाब, यह आपके हाथ में पट्टी कैसी है?"

"सूखे मुँह से मैंने कहा—"परसों काले साँप ने काट खाया।"

"अरे, काला साँप!"

"जी काला!" यह कह कर मैंने इधर-उधर उन लोगों पर नज़र डाली, जिनको मगरवाला क़िस्सा सुना रहा था, और जो

शायद अब बाक़ी कहानी को पूरा करने की फ़रमाइश करने ही वाले थे। किसी के चेहरे पर गम्भीरता थी, तो किसी के चेहरे पर मुस्कराहट।

"कहाँ ? कैसे ? कहाँ काट खाया ? कैसे काट खाया ? कब ?"

"मैंने कहा न, कि परसों काट खाया।"

"कहाँ ? आप क्या कर रहे थे ?"

"यहाँ !" मैंने पट्टी पर हाथ से बताकर कहा—"यहाँ काट खाया, मैं खाना खा रहा था।"

"तो फिर क्या हुआ ?"

"फिर साँप ने काट खाया।" मैंने सरलता से कहा।

"कैसे ?"

"ऐसे।" मैंने अंगुली से चुटकी लेकर साँप के काटने की नक़ल करते हुए कहा—"ऐसे काट खाया।"

"अजी साहब, यह मतलब नहीं। आख़िर क्या हुआ था ? साँप कैसे आया और पूरी घटना किस प्रकार घटी ?"

इसके बाद मैंने अपने साँप के काटने की कहानी सुनानी शुरू की, जो दुर्भाग्य से इस समय मुझे याद नहीं। परन्तु इतना ख़ूब अच्छी तरह याद है कि मैंने अपनी कहानी बड़े अच्छे ढंग से सुनाई थी।

जो लोग मगर का क़िस्सा सुन चुके थे, उनके प्रश्नों का मैंने बड़ी ही सादगी से उत्तर दिया। मैंने कहा—"मगर भला कैसे काट सकता है।—मुझे मगर ने कभी नहीं काटा।" मेरी

गम्भीरता पर पहले तो वे कुछ मुस्कराये फिर उनके चेहरों पर कुछ चिन्ता के चिह्न दिखाई पड़े। परन्तु मैं पूर्ण गम्भीर बना रहा। मेरे मन को प्रसन्नता हो रही थी और दिन भर के सही जवाब देते रहने से जो कष्ट हुआ था, वह दूर हो चुका था।

पहले की अपेक्षा अब मैं प्रसन्न था। बड़ी बेपरवाही के साथ मैं अखबार पढ़ने में व्यस्त हो गया।

कई स्टेशन गुज़र गये, और कोई नवागन्तुक ऐसा न आया, जो मेरी पट्टी का हाल पूछता। किसी ने सच कहा है कि 'कभी नाव गाड़ी पर, और कभी गाड़ी नाव पर।' अब मेरा नम्बर था, और मैं राह देख रहा था कि कोई मुझसे पूछे? पर किसी ने न पूछा। यहाँ तक कि मैं घर यानी ससुराल पहुँचा।

... ...

रात के साढ़े ग्यारह बजे होंगे। सासजी के सामने फ़र्श पर मैं अदब के साथ बैठ गया। सलाम-दुआ के बाद पहला प्रश्न जो उन्होंने किया, वह यह था—"खुदा खैर करे, यह तुम्हारे हाथ में पट्टी कैसी बंधी है?"

"गोली लग गई।" मैंने जल कर कर कहा।

"या अली!" वे चौंक कर बोलीं—"गोली? खुदा खैर करे! कैसे लग गई?"

"बन्दूक़ की नाल से!" मैंने कहा।

"बेटा, आखिर क्या हुआ था, कैसे बन्दूक़ चल गई?"

मैं क्या बताऊँ। मुझे इन प्रश्नों से अब कैसी तकलीफ़ हो

रही थी। सबसे बड़ी चिन्ता मुझे यह देख कर हो रही थी कि छतवाले कमरे पर बिजली की रोशनी ग़ायब थी। अर्थात् कमरे वाली शायद नहीं, बल्कि अवश्य वहाँ नहीं थी। अतः उन्हें जवाब देने के बजाय मैंने दिल में सोचा कि शायद अपने मामा के यहाँ गई होंगी। एक मूर्ख मित्र ने सलाह दी थी कि बिना सूचना दिये ससुराल जाना और फिर पत्नी से मिलना अधिक प्रसन्नता का कारण होता है। मैं मन में जवाब देने के बजाय अपने मूर्ख मित्र को कोस रहा था। फिर एकाएक चौंक सा पड़ा और बहुत रूखा-फीका-सा क़िस्सा सुना दिया कि संयोगवश बन्दूक़ चल गई, और गोली छूटी हुई निकल गई।

इसी बीच में मेरी छोटी साली साहिबा बल खाती, लजाती आईं। मैं उस समय बड़ी उलझन में था, क्योंकि बड़ी बी दुनिया भर की तो बातें कर रही थीं; पर यह न बताती थीं कि हमारी श्रीमतीजी कहाँ हैं। मामा के घर या अपने ही घर में। ख़ुदा का शुक्र है कि छोटी साली साहिबा से इतना तो मालूम हो गया कि श्रीमतीजी घर पर नहीं हैं। बड़ी बी बोलीं..."दोनों गई थीं, यह तो शाम ही को लौट आई, और उसने खाना खाकर आने को कहा था; पर रह गई। बहिन ने पकड़ लिया होगा। अल्लाह रक्खे, दोनों में बड़ी मोहब्बत है, अक्सर बुला भेजती है।"

यह कह कर बड़ी बी ने तो ममेरी बहिन के प्रेम की अरुचिकर कहानी कहना शुरू की, और इधर मैंने मुँह बनाया और

बेपरवाही से जँभाइयाँ लेना शुरू कीं; क्योंकि पत्नी से इस प्रकार का प्रेम करनेवालियों से मुझे सख्त नफ़रत है। ख़ुदा का शुक्र है कि बड़ी बी समझ गईं और कहने लगीं—"लो, अब तुम सो रहो।"

मैं थके हुए पैरों से अँधेरे में बड़ी बेपरवाही के साथ ज़ीने पर चढ़ा। छत पर पहुँचते ही बत्ती जलाई। नौकरानी कमबख्त ने मेरा बिस्तर ज्यों का त्यों पलंग पर रख दिया था। मैंने खोल कर बिछाया, बत्ती बुझा दी और लेट रहा। बहुत जल्द नींद आ गई।

रात का पिछला पहर और गर्मियों की ठण्ढी हवा में मत-वाली नींद! किन्तु कुछ आहट, कुछ गर्मी और कुछ सुगन्ध उस नींद को भी भगा सकती है। मैं बिजली की रोशनी में हड़बड़ा कर उठा, "कौन?" मेरे मुँह से निकला। जवाब देनेवाली मुस्करा रही थी। वह मेरी उपस्थिति पर और मैं उसकी उपस्थिति पर। ग़लती मेरी थी। कमरे के बग़ल में दूसरी ओर सामने ही तो चारपाई पड़ी थी। मैंने देखी ही नहीं। न सलाम न दुआ! वे भी सबसे पहले यही पूछ बैठीं—"यह हाथ में आपके क्या हुआ? पट्टी कैसी बँधी है?"

एक दम से लगा, मानो गोली लग गई हो। उन्हें छोड़ कर अलग खड़ा हो गया और उसी समय कान पकड़ कर यह निश्चय किया कि अब पट्टी कभी न बाँधूगा। ख़ुदा मेरे इस निश्चय की लाज रक्खे!

यह तस्वीर किसकी है ?

[१]

मुझे अगर अपनी बीबी की तस्वीरें तरह-तरह से खींचने और खिचवाने का शौक़ था. तो कोई ताज्जुब नहीं। तस्वीरें खिचवाईं, जगह-जगह से ऐनलार्ज करवाईं, हर रुख़ से बिठा कर तस्वीरें लीं, हर लिबास और हर ढंग से तस्वीरें खीचीं, चौखटे लगवाए, उम्दा-उम्दा फ्रेम बनवाये, तस्वीरों में तरह-तरह के रंग भरवाये; ग़ारज़ मुसव्वरी की हद कर दी और कमरे को चित्रशाला बना दिया।

और मेरे इस शौक़ का परिणाम यह हुआ कि अब श्रीमती जी को भी अपने प्रिय पति की तस्वीरें खिचवाने का शौक़ लग गया ! खुदा खैर करे !

× × ×

मेरी मौजूदा तस्वीरों को श्रीमती जी ने ग़ौर से देखा। "इनमें से कोई ठीक नहीं है। भौंएँ सिकोड़ कर कहा, "घर की खिंची हैं न!"

भाभी जान ने मुस्कुरा कर आंख के इशारे से कहा—"यह तो नहीं है घर की, देखो, देखो !"

"तो फिर किसी ऐसे-वैसे ने खींची है !" श्रीमती जी बोली।

"नाम नीचे लिखा है। फिर ऐसे मशहूर फ़ोटोग्राफ़र की दूकान···!"

झल्ला कर श्रीमती जी ने कहा—"ऊँची दूकान फीका पकवान! बेगार टालते हैं सब! इससे अच्छी तो ख़ुद मैंने खींची है।"

"आख़िर इसमें ख़राबी कौन-सी है?"—भाभी जान ने श्रीमती जी से पूछा। "बिलकुल साफ़ तस्वीर है। बाल-बाल साफ़ आया है। यह देखो आँख के नीचे की । ज़रा भाई इधर मुँह फेरिएगा।"

मैंने मुँह फेर लिया, तो कहा—"यह! यह! यह देखो, आँखों के नीचे हड्डी जिस तरह साफ़ इस रुख से दिखाई देती है, वैसे ही इसमें है। और फिर···फिर यह देखो आँख की तरफ़ से नीचे का ढाल बराबर चला आ रहा है और ठोड़ी के पास··· यह देखो फिर उभरी हुई हड्डी साफ़ है!"

इस तरह भाभी जान ने मेरे चमरख चेहरे के ऊँच-नीच की तशरीह (व्याख्या) करके साबित कर दिया कि तस्वीर बिलकुल हू-बहू ठीक है। नक़ल मुताबिक़ असल है। श्रीमती जी को बेहद बुरा मालूम हुआ? उन्होंने तस्वीर हाथ से झपट ली और जल कर कहा– "अच्छा बहन, मैं तुमसे थोड़ी ही कह रही हूँ, जो तुम बहस पर तुल पड़ीं।" यह कह कर तस्वीर भाभी जान से ले ली।

रुस्तम के दोस्त, असफ़न्दयार, मेरे एक दोस्त थे, जिनसे मेरी बहस रहती थी, कि मैं तगड़ा या वह जाड़ों में अण्डे खाये जाते थे और गुप्त रूप से डण्ड पेलते थे। और फिर दोनों पहल-

वान अपने क़बीहैकल (हृष्ट-पुष्ट) जिस्मों को नापते थे और स्टेशन जा कर वज़न करके मुक़ाबला करते थे। कभी मैं एक मन पाँच सेर का निकलता, तो वह छः सेर; और कभी मैं सेर आध-सेर बढ़ जाता। उसकी तस्वीर भी निकल आई और भाभी जान ने तस्वीर देख कर कहा—"ज़रा इन चमरख़ को देखना··· डर लगता है बस देखने से !"

श्रीमती जी दिल ही दिल में सुलग गईं और फ़ुर्ती से उन्होंने एक तीसरी तस्वीर निकाली और कहा—"ज़रा मज़हर भाई को देखना ! मालूम होता है, बोरा है रक्खा हुआ ! मुझे तो क़ै आती है देखने से · ज़रा देखिए तो गर्दन !"

मज़हर वाक़ई बेहद मोटे थे। मगर यह इशारा था दरअसल भाई साहब की तरफ़ और भाभी जान ने फ़ौरन एक मुस्कुराहट के साथ उसको महसूस किया।

"न भागने के, न दौड़ने के·····!" श्रीमती जी ने कहा। (क्योंकि परसों ही का ज़िक्र है कि भाई साहब ने दौड़ने का नमूना मेरे मुक़ाबिले में अजीब ही भद्दी तरह पेश किया था।)

भाभी जान ने तुरन्त ही प्रतिवाद किया—"ख़ैर, दौड़ने-भागने की भले आदमियों को ज़रूरत ही क्या है ? मुर्ग़ियाँ पकड़ने के लिए नौकर हैं।"

दरअसल मुर्ग़ी निकल भागी थी, और उसके सिलसिले में एक तरफ़ से भाई साहब ने लगे हाथों उसको घेरने की कोशिश की थी, और दूसरी तरफ़ से मैंने।

"जो दौड़-धूप न पाये, वह आदमी ही क्या ?"—श्रीमती जी ने कहा और अपनी तस्वीरें समेट कर चलती बनीं।

मुझ से श्रीमती जी ने कहा—"आज शाम को फ़ोटोग्राफ़र को ले आना।"

[२]

फ़ोटोग्राफ़र आया, तो सबसे पहिले श्रीमती जी ने उसका कैमरा देखा। फ़ोटोग्राफ़ी जैसी जानती थीं, मुझे खूब मालूम था। मगर फ़ोटोग्राफ़ी से ज़्यादा वह 'कोडक' और 'ज़ायसकिन' और दूसरे मशहूर कारख़ानों के कैमरों और लेन्सों से तो नहीं, लेकिन हाँ, लेन्सों की फेहरिस्तों से या फिर दूसरे शब्दों में कैमरे और लेन्सों के नाम और क़ीमतों से अच्छी तरह वाक़िफ़ थीं। और सच तो यह है, कि यही उनकी फ़ोटोग्राफ़री का मा-हसल (सार) था।

"कौन-सा लेन्स है आपके कैमरे का ?"—श्रीमती जी ने फ़ोटोग्राफ़राना शान से पूछा। फ़ोटोग्राफ़र ने जवाब में एक अजीबो-ग़रीब ऐसा जर्मन नाम बताया, जिसका समझना हम लोगों के लिए ग़ैर-मुमकिन था। श्रीमती जी के चेहरे पर एक ख़फ़ीफ़-सी अनभिज्ञता की घबड़ाहट पैदा हुई। उन्होंने ख्वाब में भी यह नाम न सुना था; मगर लुत्फ़ तो देखिये—"अच्छा," कह कर उठा लिया। सिर को ज़रा-सा हिला कर पढ़ा। लेन्स के डब्बे पर, लम्बा-सा लेन्स का नाम दर्ज था। या तो यह लेन्स की क़िस्म का नाम था, नहीं तो कारख़ाने का नाम तो शर्तिया था।

उसको पढ़ने की कोशिश इसके सिवा क्या हो सकती थी, कि दिल में हर्फ़ शनाख्त करते हुए, इस मूज़ी लफ्ज़ का आधा तूल तय करने के बाद दूसरी तरफ़ ध्यान दिया जाय। अतः श्रीमती जी ने यही किया और फिर पूछा—"कितने का कैमरा है आपका ?"

"नया मँगाया है।" कुछ धमकी देते हुए फ़ोटोग्राफ़र ने आंखों में आंखें डाल कर कहा—"सिर्फ़ लेन्स चौदह-सौ रुपए का है।"

आहिस्ता से श्रीमती जी ने लेन्स फ़ोटोग्राफ़र के हाथ में वापस दे दिया।

"आप कहेंगे कि लेन्स पर इतने दाम क्यों ख़र्च किये, तो वह इसलिए कि यह लेन्स बाल की खाल की तस्वीर खींच लेता है।" फ़ोटोग्राफ़र साहब ने 'बाल की खाल' कहते वक्त इस शान से हाथ को जुम्बिश देकर कहा, गोया कि वह ख़ुद लेन्स थे!

लेन्स कैमरे पर चढ़ा दिया गया, तो श्रीमती जी ने प्लेटों की तरफ़ तवज्जह की और कहा—"रैपिड है न ?" यह कह कर हाथ बढ़ाया डब्बे की तरफ़।

"एक्सट्रा रैपिड !" डपट कर फ़ोटोग्राफ़र ने कहा।

श्रीमती जी को मालूम हो गया कि फ़ोटोग्राफ़र दबाव में आनेवाला नहीं, वरना उससे पेश्तर जो आया था, उसको तो उन्होंने न मालूम कितना सिखा कर छोड़ा था।

कैमरा मौक़े पर लगा दिया गया, और श्रीमती जी ने मुझे

हुक्म दिया कि कपड़े पहनो। मैंने कोट पहिन लिया और टाई लगा ही रहा था, कि श्रीमती जी कमरे में पहुँचीं।

"आपको तो मुझसे ज़िद है।" यह कह कर टाई हाथ से घसीट कर दूर फेंकी!

"हैं!" मैंने मुँह फाड़ा।

"कोई दूसरी टाई ही नहीं जुड़ती! बस यही रह गई है! सुबह यही, शाम यही? सुबह यही, शाम यही!!"

ट्रङ्क खोल कर डब्बे से एक 'नई-सी' टाई निकाली, और हाथ में टाई ले कर कहा :' ···और कोट! कोट!!"

मैंने कोट की तरफ़ देखा—"क्यों क्या हुआ?"

"जैसे जानते ही नहीं, कि स्याह कोट होना चाहिए।" यह कह कर सर्दियों का आस्मानी ब्लेज़र निकाल लाईं।

"मार डालोगी··· गर्मी में।"—मैंने ब्लेज़र को देख कर कहा। ख़ुदा के लिए ····!'

"आपको तो फ़िज़ूल बातें आती हैं। एक लमहा-भर को पहनना है।" यह कह कर ब्रश किया जाने लगा।

"आइये साहब!"—फोटोग्राफ़र ने कहा।

मैंने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और चला बाहर को! श्रीमती जी ने ज़ोर से मेरा बाज़ू पकड़ कर कहा—"आइने में देखो ज़रा, ज़रा सर को, सर को, सर को!"

मैंने देखा, बाल बिलकुल ठीक बने हुए थे; मगर ऐसे नहीं जैसे श्रीमती जी को पसंद हैं, उनका बनाना ही दुश्वार है।

मैंने कहा—"ख़ुदा के वास्ते मुझसे वैसे बाल न बनवाओ, औरतों जैसे !"

"क्या आप फ़िज़ूल बातें करते हैं ! ·····नहीं मानेंगे आप ···· इधर·····इधर लाओ·····मैं न मानूँगी····· ।"

पकड़ लिया श्रीमती जी ने आख़िर को। मुझे बालों का यह नामाक़ूल तर्ज़ बिलकुल नापसन्द था। मगर ···

कुर्सी पर बैठ गया और मेरी प्राणप्यारी ने पीछे खड़े होकर मेरा सर ठोड़ी से पकड़ कर मानो अपनी गोद में रख कर बाल बनाना शुरू किया। निहायत कामयाबी के साथ ब्रश से नोक-पलक दुरुस्त करके इतमीनान से देखा। अब मुझे इजाज़त थी। मैं उठा और दृष्टि-केन्द्र बना हुआ कुर्सी पर जाकर बैठ गया। फ़ोटोग्राफ़र ने कैमरे का लेबेल दुरुस्त करके स्याह कपड़े में सर डाल कर फ़ोकस लेना शुरू किया और थोड़ी देर बाद सर निकाला।

"ठीक है ?" श्रीमती जी ने पूछा। और अब अपना सर स्याह कपड़े में डाल कर देखा। कैमरे के ताक़तवर लैन्स ने कुछ और ही कहानी कही। एकदम से श्रीमती जी ने सर निकाल कर फ़ोटोग्राफ़र से कहा—"बिल्कुल ग़लत है !!"

"कैसे साहब ? कैसे ?"

"देखो ख़ुद !"

फ़ोटोग्राफ़र ने अपना सर कपड़े में डाला, और श्रीमती जी ने कहा—"देखिए ग़ौर से·····दोतरफ़ा चेहरे को·····बाएँ तरफ़·····।"

"क्या है ?"—फ़ोटोग्राफ़र ने उसी तरह सर डाले कहा।

"किस क़दर ख़राब तस्वीर आएगी·····और आप कहते हैं क्या है ! पोज ग़लत है !"

"तो साहब, गालों का गढ़ा तो आयगा।" सर निकाल कर फ़ोटोग्राफ़र ने कहा। और इधर मैंने एक अनुभवहीन ढंग से एक बे-अख्तियारी के साथ ज़रा गाल फुलाये। जवाब में भुन्ना कर श्रीमती जी ने फ़ोटोग्राफ़र को देखा और फिर कहा—"कैसे आप कहते हैं ?" मेरी तरफ़ मुतवज्जह होकर कहा—"आप सीध में उस बकरी की तरफ़ देखिए।" सामने ज़रा बाएँ हाथ को एक बकरी बैठी जुगाली कर रही थी।

अब श्रीमती जी ने सर डाल कर कपड़े में देखा। हाथ से इशारा कर के कहा—"इधर को उधर उधर बस···बस ऊँ···ऊँ···इतना नहीं···बस ज़रा इस तरफ़···हाँ, सर ऊँचा ··· अरे इतना नहीं···बस बस ज़रा आगे··· !"

यह कह कर श्रीमती जी ने अपना सर निकाला और कहा—"बस, अब जुम्बिश न कीजिएगा। आप बस बकरी पर नज़र जमाए रहिए !"

अब फ़ोटोग्राफ़र साहब की बारी आई। उन्होंने सर डाला और बोले—"यह पोज़ तो उससे भी ग़लत है !" यह कह कर सर निकाल लिया बाहर, और कहा—"बालों को आपने नहीं देखा, बेतरह 'हाई लाइट *' पड़ रही है; फिर होंठ बाहर निकले

* रोशनी की चमक जो फ़ोटो में सफेद आती है।

मालूम हो रहे हैं, और ठोड़ी की हड्डी···आगे को···फिर कनपटी।"

इधर कुछ मेरा हाल भी सुनिए। गर्मी के मारे बुरा हाल! फिर गर्दन की रग-रग में दर्द, क्योंकि तमाम रगें एक ख़ास तरीके पर गर्दन को साधने पर मजबूर की गई थीं, जैसे ख़ेमे के बीच के खम्भे को डोरियाँ क़ायदे से खींचे रहती हैं। होठ मेरे मोटे हैं। मैं उन्हें दाँतों से पकड़े नहीं, बल्कि गोया पीए बैठा था। तमाम बालों की कोमल और बारीक नसें ढीली हो चुकी थीं। फिर हवा की एक रमक चुचके गालों को ख़फ़ीफ़-सा फुलाने के लिए भी मुँह में रोके रहा, और वह भी इस तरह कि एक तरफ़ गाल में ज़्यादा हवा हो और दूसरी तरफ़ कम। इसका ज़रा तजुर्बा कीजिए, तब मालूम होगा, कि यह काम किस क़दर मुश्किल है। यह सब बातें और फिर बकरी! वह भला निचली काहे को बैठती। खड़ी हो गई और घूम कर दूसरी जगह! मैंने उसकी जगह तो अन्दाज़ ली थी, कि यहाँ बैठी थी, और सोच लिया कि नज़र जगह पर ही रक्खूँगा; मगर फ़िलहाल तो नज़र बकरी पर थी। बोल सकता न था, क्योंकि होंठ मसूड़ों के साथ चिपकाये बैठा था।

श्रीमती जी ने फिर सर अपना डाला और थोड़ा-सा "इधर ···उधर ··ऊपर···नीचे" करने के बाद फ़ोटोग्राफ़र से कहा—"अब तस्वीर ले लो।"

फ़ोटोग्राफ़र ने भी झगड़ा ख़त्म करना चाहा, और उधर उसने 'रेडी' कहा और इधर मैंने ज़रा गालों में हवा पकड़ी।

"वन·····टू ····थ्री !" तस्वीर खिंच गई। मैंने इतमीनान की साँस ली। श्रीमती जी और फ़ोटोग्राफ़र ने तस्वीर बढ़िया होने के बारे में भविष्यवाणी की। फ़ोटोग्राफ़र को हुक्म दिया गया कि जल्द से जल्द प्लेट धोकर दिखाये और उसके बाद प्रूफ़।

(३)

सम्भवतः आपने स्कूलों में हिसाब पढ़ा होगा और तमाम अलामात जोड़-बाक़ी, और ब्रैकिट वग़ैरह से वाक़िफ़ होंगे। बाक़ी की अलामात होती है यह—जिसको अँगरेजी में 'माइनस' कहते हैं और ब्रैकिट की अलामात होती है यह ( ) जिसे छोटा ब्रेकिट कहते हैं।

प्लेट धुल कर और सूख कर आई। श्रीमती जी ने कहा—"यह क्या है ?"

नाक़ और टोढ़ी के दरमियान हिसाब की अजीब अलामत मौजूद थी। इस तरह (—) यानी बाक़ी की अलामत छोटे ब्रैकिट के दरमियान !

"मुँह है" फोटोग्राफर ने कहा। और वाक़ई था भी मुँह ही। मूँछें मैं मुड़वाता था।

"अरे साहब यह क्या है ! ····दोनों तरफ !" श्रीमती जी ने ब्रैकिटों के बारे में पुछा—"यह क्या है ?" और फ़ोटोग्राफ़र ने जबाब में मेरे मुँह की तरफ़ देखा। मैंने क़ुदरतान जँभाई लेकर एक ख़ास तरीक़े से मुँह सिकोड़ कर ब्रैकेट को अपने चेहरे पर से मिटाना चाहा, यानी होंठ समेट कर ज़रा आगे कर दिये।

फ़ोटोग्राफ़र ने मेरी तरफ उँगली से बता कर कहा—"पर झुर्रियाँ हैं, बाँछों के इधर-उधर देखिए।"

"इतनी वाज़ेह (स्पष्ट) तो नहीं हैं।"—श्रीमती जी ने कहा।

"मेरा लेन्स तो बाल से भी बारीक निशान को नहीं छोड़ता; और फिर मेरी क्या ख़ता है। लेन्स का तो काम ही यह है, कि असल की नक़ल उतार दे।"

"प्रिण्ट लीजिए····प्रूफ़ बनाइए; देखें।" श्रीमती जी ने कहा।

× × ×

प्रूफ़ तैयार हुआ और मैं बेचैन-सा हो गया, क्योंकि गाल मसनवी तौर पर फूले थे, और साफ़ मालूम होता था। "यह क्या?" श्रीमती जी ने एक कड़ी नज़र अब मेरे ऊपर डाली। इसी हरकत की वजह से यह अजीबो-ग़रीब ब्रैकिट इस क़दर ज़ाहिर हो गये थे!

मैं क्या जवाब देता। कुछ हकलाकर मुज़रिमाना अन्दाज़ से लाल-पीली आँखों को देख कर दिल ही दिल में पढ़ने लगा—

"तू अगर चाहे उलट दे परदए वज़मे-मजाज़।
कोई शै मुश्किल नहीं है हुस्ने-बरहम के लिए॥"

श्रीमती जी ने प्लेट उठा कर वह फेंकी तो झन से फ़र्श पर गिर कर खील-खील हो गई!

प्लेट फेंक कर श्रीमती जी ने फ़ोटोग्राफ़र के कहा—"आप न तो पोज़ लेना जानते हैं, न यह कि किसी जगह को ख़ास

फ़ोकस में लें और न फिर आपको यह पता है कि रौशनी का रुख़ किधर है, और फिर प्लेट धोने में तो आप कमाल करते हैं ! बिलकुल स्याह तस्वीर खींच कर रख दी। बस, कैमरा क़ीमती हो ! न मालूम क्या सोच रक्खा है सबने।"

फोटोग्राफ़र इसका क्या जवाब देता। उसने मेरी तरफ देखा, और मैंने उसको आँख मार दी कि चुप रहे। वह एक ताजिर (व्यापारी) आदमी, समझ गया और बोला—"आप ख़फ़ा क्यों होती हैं, मैं दूसरी तैयार करता हूँ ·····अभी।"

"आपसे नहीं खिंचेगी।" श्रीमतीजी ने कहा।

"अभी लीजिए। अभी-अभी देखिए मेरी कारीगरी !" श्रीमतीजी की कमज़ोरी को उसने शायद मेरी आँख झपकते ही ताड़ लिया था !

× × ×

फिर मुझे सौ शृंगार करने पड़े। बन-ठन कर फिर मैं नई बहू की तरह कुर्सी के आगोरा (गोद) में !

फिर तमाम वही पुराने नुस्खे दोहराये गये। अबकी मर्त्तबा मैंने गाल क़तई न फुलाए, क्योंकि फ़ोटोग्राफ़र ने दूसरी तरकीब पेश की थी; वह यह कि छोटे-छोटे दो पान खिलाकर कहा था कि चबा कर इधर-उधर बराबर के हिस्सों में तक़सीम कर लूँ। ज्यों-त्यों करके तस्वीर ली गई।

शाम ही को फ़ोटोग्राफ़र ने प्लेट पेश की। श्रीमती जी ने फ़ौरन नापसन्द कर दी। मगर क़ब्ल इसके, कि ना-पसन्दगी

के वजूहात बयान करे, फ़ोटोग्राफ़र ने ज़बानबन्दी कर दी—"आप अभी कुछ न कहें। अगर तस्वीर नापसन्द हो, तो जो चोर का हाल, सो मेरा!"

प्रूफ़ लिया गया। बेहद ख़राब आया, यानी दूसरे शब्दों में बिलबुल असल के मुताबिक़ कैमरे के ताक़तवर लैन्स ने रुख़सारों (गालों) की मिट्टी पलीद कर दी थी, बीच में पान दबा हुआ था, और इधर-उधर उठ आये थे, मगर इर्द-गिर्द आगरे के क़िले की तरह खन्दक़ थी। ब्रैकिट मुँह के दोनों तरफ़ बदस्तूर थीं; मगर इतनी ज़ाहिर बेशक नहीं थीं, जितने गाल वैसे फुलाने से पेश्तरवाली तस्वीर में आ गई थीं। फिर चेहरे की दूसरी जगह की तमाम झुर्रियाँ, जो एक चमरख चेहरे का इम्तियाज़ी निशान हैं, अपनी-अपनी जगह बस सफ़ाई से मौजूद थीं कि जी यही चाहता था कि मिटा दें सबको एकदम से पर मुश्किल तो यह थी कि तमाम चेहरे पर धूप-छाँह-सी छिटकी हुई थी। आईने में शायद अपनी सूरत की कुछ ख़राबियाँ ऐनक आँखों के सामने लाज़िमी तौर से होने की वजह से दिखाई देना दुशवार हैं; मगर एक ताक़तवर लैन्स और उम्दा कैमरे ने कच्चा-चिट्ठा खोल कर रख दिया है। फ़ोटोग्राफ़र इस बेहतरीन तस्वीर को 'नामुकम्मल' और 'ख़ाका' का लक़ब देकर ले गया, 'रिटच' करने के लिए, वरना वाक़या तो यह है, कि तस्वीर न सिर्फ़ मेरी बेहतरीन तस्वीर थी, बल्कि बिलकुल मुताबिक़ असल।

"अरे बुलाना तो ज़रा"—श्रीमतीजी ने बौखला कर फ़ोटो-

ग्राफ़र को बुलवाया। वह आया, तो श्रीमतीजी ने उँगली के इशारे से प्लेट को देखकर बताया—"यह न आना चाहिए, यानी ब्रैकिटें।" फ़ोटोग्राफ़र ने इतमीनान दिलाया कि इसका तो पता तक न चलेगा।

(४)

पाँच रोज़ बाद का वाक़या है, कि मैं कॉलिज से वापस आया। सारा कमरा आईने की तरह गोया चमक रहा है। श्रीमतीजी कमरे में खड़ी दोनों हाथों की मुट्ठियों को दूरबीन बनाए हुए दीवार की तरफ़ देख रही थीं। मेरे पैर की आहट सुनकर मेरी तरफ़ देखा। मेरा एक क़दम बरामदे में था और दूसरा कमरे में। हम दोनों ने एक-दूसरे को देखा, और फिर मैंने दीवार की तरफ़। सामने मेरी तस्वीर दीवार पर लगी थी। वल्लाह! क्या तस्वीर थी, कि मैं देखता का देखता रह गया।

"माशाअल्ला कैसी सूरत पाई है!"—मैंने कहा।

"कैसी लाजवाब तस्वीर खींची है!"—तस्वीर की मालिका, यानी श्रीमती जी ने कहा।

"यह तस्वीर किसकी है!" कमरे में दाख़िल होते हुए भाभी जान ने पूछा। फिर ज़रा ज़ोर देकर कहा—"यह तस्वीर किसकी है!"

श्रीमतीजी ने भाभी जान की तरफ़ देखा। भाभी जान ने श्रीमतीजी, तस्वीर और मेरी तरफ़ देखकर फिर श्रीमतीजी से पूछा—"कहाँ से आई·····यह तस्वीर किसकी है!"

श्रीमतीजी के दिली जज़्बात (भावों) का मुझे ठीक पता नहीं, पर उनके रौशन चेहरे पर ग़ुस्से का एक ग़ुबार-सा छा गया। मगर मुझसे पूछिए कि मेरा क्या हाल हुआ, हालाँ कि तस्वीर किसी तरह मेरी फ़ोटो कहलाने की मुस्तहक़ न थी। और न मैंने उसे बनवाया था; मगर उसको मैं वजूद में लाने का ज़िम्मेदार ज़रूर था।

भाभी जान ने शायद ख़ामोशी के कुछ मानी लिए और ग़ौर से तस्वीर और मेरे चेहरे का मुक़ाबिला करके मुस्कुरा कर अपने सर को जुम्बिश दे कर कहा—"आपकी है! ···सच बताइए ··· आपकी है न?'

"उफ़!" श्रीमती जी ने जलकर कहा—"उफ़, कैसी बनती हैं आप जैसे·····।"

इतने में खट से दरवाज़े की चौखट पर आवाज़ हुई. और भाई साहब ने अपनी बुलन्द आवाज़ में कहा—"क्या है!··· हैं···यह तस्वीर किसकी है!"

"खूब! यह आपकी तस्वीर है!" भाभी जान ने कहा।

"यह तस्वीर किस गधे ने खींची है!" भाई साहब ने कहा—"लाहौल विला कुव्वत!"

श्रीमतीजी के यहाँ इस वक़्त कबाबों की दूकान लगी हुई थी। क्या मैं जवाब देता और क्या वह! भाभी जान के चेहरे पर सख़्त शरारत-आमेज़ मुस्कुराहट ज़ाहिर हो रही थी। उन्होंने जल्दी-जल्दी ऐनक साफ़ की और ग़ौर से ऐनक दाहिने हाथ से

पकड़ कर मुझे देख कर अब तस्वीर को निहायत ही गौर से देखना शुरू किया। उनका चेहरा ज्यादा चमकने लगा! मुस्कुराहट ज्यादा नुमायाँ होती गई। श्रीमती जी उनके चेहरे की तरफ़ टकटकी बाँधे देख रही थीं। जिस मुनासिबत से भाभी जान खिलती जा रही थीं, उसी मुनासिबत से श्रीमती जी के चेहरे पर ग़मो-ग़ुस्सा की तहरीर पुरताब होती जा रही थी। हत्ता कि··· जङ्ग!

× × ×

भाभी जान कमरे से कहकहे लगाती गईं। जब ज़रा ग़ुस्सा कम हुआ, तो श्रीमती जी ने उस साज़िश का अन्देशा ज़ाहिर किया, जिसको भाभी जान ने शुरू किया था। दर असल भाभी जान और भाई साहब दोनों लड़ने की नीयत से मशविरा करके आये थे।

अभी यह बातें हो ही रही थीं कि शेखानी बूआ आ पहुँचीं।

"यह तस्वीर किसकी है?" उन्होंने ग़ौर से देखकर रकाबी से तस्वीर की तरफ़ इशारा करके मुस्कुराते हुए कहा—"किसी फ़िरङ्गिन की है? मेम की!"

श्रीमतीजी इस ज़ोर से फट पड़ीं कि खुदा की पनाह!

"ऐसी बातें वहीं (भाभी जान से) जाकर किया करो। ख़बरदार, जो मुझसे ऐसी बातें की!"

बड़बड़ाती हुई बी-शेखानी कमरे से निकल गईं।

इतने में खरबूजे वाली आ गई। रोज़ आती थी। मेरी

दानिस्त में भाभी जान के कमरे की तरफ़ से होकर ही आई थी; जभी तो उसको उन्होंने सिखाकर भेजा। उसने आते ही बजाय ख़रबूज़ों की बात-चीत करने के, फ़ौरन श्रीमतीजी की तरफ़ देख-कर पूछा—"यह तस्वीर किसकी है!"

"निकल यहाँ से!" श्रीमतीजी ने आग-बबूला होकर कहा—"निकल यहाँ से चुड़ैल, निकल, नहीं·· निकल··· निकल!"

× × ×

"मशीन का शटल मँगवाया है!"

मुड़ के श्रीमतीजी ने देखा। पड़ोस के बङ्गले में श्रीमतीजी की मुँह बोली बहन रहती थी। उन्होंने लड़के मुलाज़िम को को शटल लेने भेजा था।

"अच्छा देती हूँ।" श्रीमतीजी ने कहा।

"यह तस्वीर किसकी है?" उसने गोया जवाब दिया।

श्रीमतीजी ने एक चाँटा इस ज़ोर से उसके ग़ाल पर दिया कि जब तक वह लकड़ी तलाश करे-करे वह रोता हुआ भागा।

"अबे शटल तो लेता जा!" मैंने पुकार कर कहा, मगर वह तो डबल जा रहा था।

अभी श्रीमती बड़बड़ा रही थीं, कि भाभी जान के यहाँ से आया जी आईं। भेजी गई थी वह श्रीमतीजी की तबियत का हाल पूछने, मगर देखिए तो मक्कारा की बातें कि पूछती है—"यह तस्वीर किसकी है?"

एक डाँट बताई श्रीमतीजी ने, और डपटकर निकाला।

"मैं तो तबियत पूछने आई थी।"

"चूल्हे में जाय तबियत·····निकलो यहाँ से !"

आया जी गई ही थीं, कि भिश्ती का लड़का आया 'इनाम' माँगने। उसकी ख़बर ली गई, कि धोबिन आई, उसके बाद वालिदा साहेबा आई, फिर नानी-अम्मा आईं और उन्होंने भी आँखें मिचका कर यही पूछा।

"दिन भर इसी हड़बोंग में कटा। शाम को जो मैं वापस आया हूँ, तो क्या देखता हूँ कि एक लकड़ी मोटी-सी रक्खी है। सब्र का प्याला लबरेज़ हो चुका है। "अगर अब किसी ने पूछा कि यह तस्वीर किसकी है, तो उसकी ख़ैर नहीं।" श्रीमतीजी ने लकड़ी दिखा कर मुझसे कहा।

इत्तफ़ाक़ तो देखिए कि भाभी जान का कुत्ता टॉमी कमरे में आया और लगा दुम हिलाकर देखने तस्वीर की तरफ।

उसने दुम हिलाना बन्द कर दिया। ग़ौर से तस्वीर की तरफ़ देखकर एकदम खड़ा हो गया, सन्नाटे में आ गया। देखते-देखते इधर तस्वीर से आँख हटाकर उसने श्रीमतीजी की तरफ़ सकलिया आँखें फेरी हैं, कि वह लकड़ी इस ज़ोर से उसकी पीठ पर पड़ी कि दोहरा हो गया और बेतहाशा भागा ! श्रीमती जी उसके पीछे ·····।

दरवाज़े पर झूलेदार कुर्सी में कुत्ता उलझा·····। इधर से श्रीमतीजी ··· और उधर से अपने अज़ीज़ टॉमी की सदाए-

फ़रियाद (गुहारा) से घबड़ाकर भाभी जान लपकीं ! कुत्ता तो निकल गया, मगर जेठानी-देवरानी में ऐसी टक्कर हुई कि दोनों गिरीं !

भाभी जान की ऐनक टूट गई,—वह जो उन्होंने अभी-अभी मुझसे मोल ली थी और दाम भी नहीं दिए थे।

"यह लीजिए अपनी ऐनक !"—भाभी जान ने टूटी हुई ऐनक मेरे हाथ में दी, गोया अब दाम न देंगी और फिर उसके बाद·····।

× × ×

आज तक श्रीमतीजी और भाभी जान में बात-चीत नहीं हुई और हो कैसे ? क्योंकि उन्होंने क़सम खा रक्खी है, कि मैं लोगों को सिखाने-पढ़ाने से बाज़ न आऊँगी। चुनाचे जो आता है, वह यही पूछता है कि "यह तस्वीर किसकी है ?" और फिर भाभी जान को देखिए कि क़समें खाती हैं झूठी, कि मैंने किसी को नहीं सिखाया। क्या तदबीर है कि भाभी जान लोगों को सिखाना-पढ़ाना छोड़ दें और लोग इस तरह का नामाकूल सवाल करना छोड़ें ?

चिल्लाकशी

हम तहसीली स्कूल में उर्दू मिडिल में पढ़ते थे और हमारे पूज्य पिता जी की कामना थी कि किसी तरह हम जल्दी से मिडिल पास करके पटवारी हो जायं और हमारा विवाह कर दिया जाय। मगर हमारा भाग्य भी विचित्र था। दो वर्ष से बराबर फेल हो जाते। लोग हमको गब्बर कहते थे। कोई कहता था कि हमारे दिमाग़ में भुस भरा है, कोई कहता था कि गोबर भरा है और कोई कहता था कि हम बिलकुल उल्लू हैं। पर तनिक भी इंसाफ़ से देखा जाय तो हमारी कुछ ख़ता नहीं थी। अगर हम सबक़ याद करें और फिर भी भूल जायँ तो हम उल्लू कैसे हुए।

हमारे स्कूल के हेडमस्टर मुंशी रामसहाय कायस्त थे और बड़े ही ख़तरनाक आदमी थे। हमको अच्छी तरह याद है कि जब हमारे पिता जी ने हमें उनके हाथों सौंपा तो ये शब्द कहे थे कि—"मुंशी जी इस लड़के की हड्डी पसली हमारी और गोश्त और चमड़ा तुम्हारा, पर यह लड़का लायक़ निकले।" स्पष्ट है कि इन ख़तरनाक मुंशीजी को हमें मारने-कूटने में क्या संकोच हो सकता था, जब कि हमारे मांस और चाम की उनके नाम इस प्रकार रजिस्ट्री कर दी जाय।

हर साल मेरे फेल हो जाने पर मुंशीजी मुझे कूट-कूट कर

ठीक करते थे लेकिन सबसे बड़ी विपत्ति फेल होने से मेरे ऊपर यह आती थी कि मेरा विवाह केवल इसी कारण रुका हुआ था के मैं फेल हो जाता हूँ और धीरे-धीरे मैं अपनी अयोग्यता के लिए विख्यात हो रहा था और मुझे शंका हो रही थी कि कहीं यह ख्याति खतरनाक रूप न धारण कर ले।

मुझे सबसे अधिक भय इस बात का था कि मेरी प्रिय मँगेतर की इसी गड़बड़ और अयोग्यता के चक्कर में कहीं दूसरी जगह शादी न हो जाय। क्योंकि मुझको फिर ऐसी कन्या मिलनी असम्भव थी। वह मेरे गाँव के सबसे बड़े पट्टीदार की लड़की थी जो मेरे पड़ोसी थे, और फिर सबसे बड़ी बात यह कि मेरे साथ की खेली हुई थी और दोनों के हृदय एक हो चुके थे। जब मैं सोचता था कि इस फेल होने के कारण मेरी मँगेतर छिन जायगी तो चिंता और दुख के मारे मेरा बुरा हाल हो जाता था।

(२)

परीक्षा में मैं तीसरी बार बैठा था। आप स्वयं इससे अनुमान कर सकते हैं कि मेरे पास होने का कहाँ तक विश्वास था, कि परीक्षा की तैयारी के सिलसिले में पीटते-पीटते मुंशीजी ने मेरा नक़शा बिगाड़ दिया था। और फिर मुझसे बचन ले लिया गया था कि यदि कहीं इस बार फेल हो गया तो मुझे मार डाला जायगा। भय के मारे मेरा यह हाल था कि मैं स्वयं कहता था कि यदि जीवित रहना है तो पास होना ही पड़ेगा। सारांश यह

कि मुंशीजी को और मेरे पिता जी को मेरे पास होने की बहुत कुछ आशा थी।

इम्तहान के नतीजे का दिन आया तो मेरे मन में एक अजीब उमंग और गुदगुदी थी। मैं सोच में मग्न था और स्वयं को दूल्हा बना हुआ देखता था और कभी यह सोचता था कि जब मेरे पिता जी के मिलने वाले मुझे बधाई देंगे तो मैं मारे शर्म के क्या उत्तर दूँगा। ग़रज कल्पना हमको कहीं से कहीं उड़ाए लिए जा रही थी।

किसी न किसी तरह गज़ट हाथ में आया और मैंने काँपते हुए हाथों से उसको खोला और स्कूल का नाम मेरी नज़र के सामने था और मैं तेज़ी से अपना नाम सफल परीक्षार्थियों की सूची में खोज रहा था। मेरे पिता जी मेरे कंधे के पास मुंह किए खड़े थे और चूँकि उनको मेरी सफलता की पूर्ण आशा थी अतः उनकी बाछें अभी से खिली हुई थीं!

मैंने मन में कहा—"हाय"। मेरा कलेजा धक से हो गया। आँखों तले अँधेरा छा गया, जल्दी से आँखों को मला और खूब ग़ौर से अपने नाम को फिर से देखा लेकिन वहाँ भला कहाँ मिलता। बदन काँपने सा लगा, हाथ काँपने लगा और ग़ज़ट मेरे हाथ से छूटकर धरती पर गिर पड़ा। मेरे पिता जी ने क्रुद्ध होकर कहा—"अरे! तो क्या तू फिर फेल हो गया?"

मैं भला इसका क्या उत्तर देता, चुप रहा। पर मेरे पूज्य पिता जी फट पड़े। क्रोध के मारे उनका बुरा हाल हो गया और

उन्होंने जूता लेकर जो मेरी मरम्मत करना शुरू की है तो मुझे लुटा-लुटा और बिछा-बिछा दिया और इसके बाद मुझे बैलों के चारे की कोठरी में बन्द कर दिया। मैं कोठरी में बिना खाये-पिये पड़ा रहा और दिन भर आने-जाने वाले मुझे धिक्कारते रहे। रात गये माता जी ने मुझे इस क़ैद के रिहा किया तब कहीं जाकर खाने को मिला।

* * * *

आठ-दस दिन तक मेरे ऊपर चारों ओर से धिक्कार और फटकार की वर्षा होती रही यद्यपि मुझे ऐसी फिजूल बातों की तनिक भी परवाह नहीं थी किन्तु मुंशी रामसहाय का चढ़का लगा हुआ था कि वे क्या कहेंगे। मुंशी थी से मेरे पिता जी और चाचा जी भी डरते थे क्योंकि वे इनके भी गुरु रह चुके थे और बहुत मारा था।

मैं मन में सोच रहा था कि मुंशी जी के रूप में जो संकट आने वाला था वह टल गया और वे अब नहीं आएँगे कि एक दिन की बात सुनिए। सुबह आठ बजे होंगे और मैं बाहर बैठा मुँह धो रहा था। एक दम से एक इक्का आकर रुका। मैंने आँख उठाकर देखा और यमदूत को देखकर मेरे देवता कूच कर गये। मुंशी रामसहाय बजाय इसके कि अपना बिस्तर और लोटा इक्के पर से उतरवाते या मेरे पिता जी के सलाम का जवाब देते, बस चील की तरह मेरे ऊपर झपटे। "मुंशी जी!" रोते हुए मेरे मुँह

से निकला और मैं हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, किन्तु वहाँ भला दया कहाँ ? मुंशी जी ने एक लकड़ी से मेरी मरम्मत शुरू की।

"फिर फेल होगा, फिर फेल होगा ?" की आवाज़ पर मैं धुनका जा रहा था और तड़पता फिरता था किन्तु मुन्शी जी मारना बन्द न करते थे। जब मेरा पिटते-पिटते बुरा हाल हो गया तो मुंशी जी ने हाथ रोका और लकड़ी लिए सीधे मेरे पिता जी की ओर उनको "उल्लू, गधा" कहते हुए इस प्रकार बढ़े कि मुझे विपत्ति में भी एक प्रसन्नता और आशा की झलक दिखाई पड़ने लगी। किन्तु उनके साथ मुंशी जी ने रिआयत की और उनको मारा नहीं पर कहने के मामले में कोई बात न उठा रक्खी। सारांश यह कि मेरे पिता जी को उन्होंने मारते-मारते छोड़ा और दरअसल वे बाल बाल बचे क्योंकि मुँशी जी मेरे फेल होने का सारा दोष उन्हीं के सिर पर थोप रहे थे। पिता जी के बाद माता जी का नम्बर आया और उनको भी मुँशी जी ने खूब बुरा भला कहा।

दो-तीन दिन मुँशी जी मेरी छाती पर कोदों दलते रहे और इस बीच कभी चाँटा, कभी थप्पड़ और कभी जूता मेरे ऊपर पड़ता रहा। जब मुँशी जी की वापसी के लिए इक्का आया तब जाकर मेरी जान में जान आई। चलते समय मैंने अपने ज़ालिम गुरु के चरण चुए और वे रवाना हुए। यह महाशय जी दरअसल अजीब आदमी थे। परीक्षा फल प्रकाशित होने के बाद सभी

विद्यार्थियों के यहाँ का दौरा करके फेल होने वालों का यही हाल करते थे। गरज़ मुझे मारने ही के लिये आप पधारे थे।

(३)

मेरी समझ में न आता था कि क्या तरकीब करूँ कि पास हो जाऊँ। अब चौथी बार इम्तिहान की तैयारी करनी थी, वही विषय और वही पुस्तकें थीं। रह-रह कर सोचता था कि या खुदा क्या करूँ जो पास हो जाऊँ।

एक दिन की बात है कि मैं इसी सोच में पड़ा अपने भाग्य को रो रहा था कि मेरे घर और पड़ोस की सब स्त्रियाँ किसी दूसरी जगह एक मृत्यु में चली गईं। मैं छत पर चढ़ गया और अपनी दीवार पर चढ़कर दूसरे मकान की छत पर धीरे से कूदा और इस तरह कई छतें लाँघ कर अपनी भावी सुसराल पहुँचा। वहाँ देखा तो मेरी प्रिय मँगेतर बैठी कुछ सी रही थी। मैंने सीटी बजाकर अपनी ओर आकर्षित किया। उसने मुझ को मुस्कराते हुये हाथ से इशारा किया और दौड़कर दरवाज़े की कुण्डी लगा दी। मैं झट से नीचे उतर गया और बिना कुछ सोचे-समझे एक-दम से उसके हाथों में मुँह छिपाकर रोने लगा। सबसे पहले तो उसने मेरे पिटने पर दुख प्रकट किया और फिर सान्त्वता देती हुई मेरी यह कहकर हिम्मत बढ़ाई कि अबकी बार अवश्य पास हो जाऊँगा। मैंने कहा कि अब मेरे बस की यह बात नहीं कि इस मुहिम को सर कर सकूँ।

बड़े-बड़े उपाय सोचे किन्तु परीक्षा से छुटकारा पाने की कोई

तरकीब न समझ में आई। किसी ने कहा है कि दो दिल एक होकर पहाड़ को काट सकते हैं। दो दिमाग़ लड़ते और कोई उपाय न सूझता यह कैसे हो सकता था। सोचते-सोचते एका-एक मेरी पत्नी को ख्याल आया और उसने वह तरक़ीब सुझाई कि मैं उछल पड़ा। उसकी माँ को शहर के एक शाह साहब ने एक मंत्र बताया था जिसके बल पर वह हारा हुआ मुक़दमा जीत गई थीं। मैंने शाह साहब का पूरा नाम और पता याद किया और मन में ठान लिया कि अवश्य उन शाह साहब से मिलूँगा। उसका और मेरा दोनों का विश्वास था कि शाह साहब के एक ही मन्त्र में इम्तहान की समस्या हल हो जायगी। थोड़ी देर के बाद मैं प्रसन्नचित्त वहाँ से विदा हुआ। अब मुझे पूर्ण विश्वास था कि मैं अगले साल अवश्य पास हो जाऊँगा।

(४)

शाह साहब ने सबसे पहले तो मुझे अपना चेला बनाया और इस बखेड़े में मेरे पाँच रुपये ख़र्च हुए जो चलते समय मेरी मँगेतर ने दिए थे, क्योंकि वह रईस की बेटी थी और मेरे पास कानी कौड़ी भी न थी। जब मैंने शाह साहब से अपने संकट का हाल कहा तो उन्होंने मुस्करा कर कहा—"अभी क्या जल्दी है, जब इम्तहान क़रीब आये तो हमारे पास आना।"

... ...

साल भर हमारा बुरी तरह बीता। मुंशीजी बात-बात पर मुझे मारते थे और हड्डी-पसली एक किये देते थे। चूँकि शाह साहब

के पास जब मैं जाता था तो अपनी सफलता का विश्वास और और भी दृढ़ हो जाता था, अतः स्वभावतः पढ़ने की ओर ध्यान कम जाता और इसका परिणाम यह होता कि और भी पिटता। इस वर्ष मैं आवश्यकता से अधिक पिट रहा था। यहाँ तक कि तंग आकर मुझे शाह साहब से, पिटने से बचने का जन्त्र लेना पड़ा। इस जन्त्र ने मुझे पढ़ने की ओर से और भी उदासीन कर दिया और परिणाम यह हुआ कि इतना पिटने लगा कि मैं समझा कि जन्त्र शाह साहब ने कहीं भूल से उलटा तो नहीं दे दिया। अतएव जन्त्र खोलकर अलग रक्खा और कुछ पढ़ने में अधिक मन लगाने लगा तब कहीं जाकर मार पड़नी कम हुई।

जब मेरे इम्तहान के दो महीने रह गये तो मैं शाह साहब के पास गया। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम चालीस दिन का जलाली चिल्ला खींचो अर्थात् चालीस दिन तक प्रेतों के वश में करने के लिए कड़ा मन्त्र जपो। चिल्ले के विषय में मुझे समस्त बातों का निर्देश दिया। यह चिल्ला एक अकेले मकान में खींचा जाने को था और इसके लिए मुझे बीस रुपये की आवश्यकता पड़ी जो मैंने अपनी मँगेतर से लिये।

मैं घर से ऐसा ग़ायब हुआ कि गाँव भर में सिवा मेरी मँगेतर के किसी को भी पता न चला कि मेरा क्या हुआ। मैंने शहर में जाकर सिर घुटाया, एक छोटा-सा घर एक सुनसान-सी गली में किराये पर लिया और चालीस दिन की ख़ुराक के लिए जौ पिसवा कर रख लिये। ईंधन भी काफ़ी रख लिया। चालीस

दिन तक मैं जौ की रोटी के अतिरिक्त और कुछ न खा सकता था। एक भिश्ती को मैंने लगा लिया और तय कर लिया कि वह तीसरे दिन पानी भर जाया करे और शुक्र के दिन नाई बुला लाया करे, क्योंकि इस बीच सिर का घुटा होना अत्यन्त आवश्यक था। मैं चिल्ला शुरू करने के पहले शाह साहब से एक बार और मिला और उन्होंने मुझे दोबारा सब निर्देश देने के बाद कुछ प्रेतों का हाल भी सुनाया।

... ...

मैं बिस्मिल्लाह करके घर में घुसा और अपने हमराज़ भिश्ती को ताला और कुंजी दी कि बाहर से बन्द करके ताला चढ़ा दे जिसमें किसी को संदेह न हो और लोग यही समझें कि मकान खाली है। भीतर पहुँचकर मैंने ज़मीन साफ़ की और उसको लीपा-पोता। फिर साफ़ चूने से तीन घेरे अर्थात् तीन कुण्डलियाँ बनाईं। एक सबसे बड़ी, उसके भीतर एक उससे छोटी और और उसके भी भीतर एक उससे छोटी। और सबसे छोटी कुण्डली के अन्दर मैं नहा-धोकर सिर झुकाकर बैठ गया और 'या बुद्धू' का मन्त्र जपना शुरू कर दिया।

... ...

मेरा मन्त्र बड़े मज़े में जारी था। तीन दिन की रोटी मैं एक दिन पका लेता, दिन और रात मेरा मन्त्र के जाप में बीतता। जब नींद आती तो उस घेरे के भीतर ही सो जाता। हर समय पवित्र रहता और नियत समय और आवश्यकता के अतिरिक्त

घेरे से बाहर न निकलता था। भिश्ती आता और चुपचाप पानी भर कर चला जाता और नाई भी इसी प्रकार सिर मूँड़ कर चला जाता। बातचीत की कड़ी मनाही थी और मैं संकेतों ही से काम लेता था। दिनों की गिनती के लिए प्रतिदिन उठकर दीवार पर कोयले का एक चिन्ह खींच देता था।

जैसे-जैसे दिन बीतते जाते थे, मेरा हृदय प्रकाशित और आलोकित होता जाता था। प्रारम्भ में तो दो-तीन दिन मुझे डर भी लगा क्योंकि चारों ओर घोर सन्नाटा होता था और मैं बिलकुल अकेले कड़ुवे तेल के दिये की मंद ज्योति में अपना मन्त्र जपता रहता था। किन्तु अब भय बिलकुल न लगता था बल्कि रात की निस्तब्धता मन को और भी दृढ़ बनाती हुई प्रतीत होती थी।

अभी तक मुझसे किसी प्रेत का सामना नहीं हुआ था किन्तु मैं अब इसके लिए भी तैयार था। एक दिन एक छिपकली इस धृष्टता के साथ मेरे बिलकुल निकट आई कि मुझे कुछ संदेह हुआ क्योंकि शाह साहब ने मुझसे कह दिया था कि प्रेत जानवरों का रूप धारण करके भी आ सकते हैं, अतः मैंने जैसे ही एक मन्त्र पढ़कर उसी ओर फूँका तो उस छिपकली-रूपी प्रेत को भागते ही बन पड़ा।

(५)

पाठकों को मालूम ही है कि मैं घर से इस तरह ग़ायब हुआ था जैसे गधे के सिर से सींग। मेरे लापता हो जाने पर मेरे पिता

जी, चाचा जी और मुंशी जी ने बहुत कुछ ढूँढ़ा किन्तु न पाया। मुंशी जी ने सोच रक्खा था कि जब इम्तहान को दो महीने रह जायँगे तो मेरे ऊपर विशेष ध्यान दिया जायगा। मेरी माता जी का एक ही सप्ताह में बुरा हाल हो गया और उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि मुंशी जी की सख्ती से तंग आकर मैंने आत्महत्या कर ली है अतः उन्होंने रो-रो कर घर सिर पर उठा लिया।

मुझसे शाह साहब ने कहा था कि संभव है तुमको चिल्लाकशी के बीच भूत-प्रेत सतायें। उन्होंने कहा था कि प्रेत दिन को भी आ सकते हैं और रात को भी। कभी तो वे जानवरों के वेश में आते हैं और कभी मित्रों तथा सम्बन्धियों का रूप धारण करके आते हैं और तरह-तरह की हरकतें करते हैं। उनका मतलब यह होता है कि वह किसी प्रकार मन्त्र-जाप में बाधा डालें। कभी वह धमकियाँ देते हैं और कभी डराते-धमकाते हैं, किन्तु हानि वह बिलकुल नहीं पहुँचा सकते उस समय तक, जब तक कि घेरे खिंचे हों। उन्होंने यह भी कहा था कि प्रेत कई प्रकार के होते हैं। जो निम्नकोटि के होते हैं और बुरी-बुरी शक्लें बनाते हैं वह तो तीन घेरों में से एक के भीतर भी नहीं आ सकते। आना तो बड़ी बात है कहीं लकीर पर उनका पैर भी पड़ जाय तो जलकर भस्म हो जाते हैं। दूसरी श्रेणी के प्रेत वह हैं जो पहले और दूसरे घेरे में तो आ सकते हैं किन्तु तीसरे घेरे में नहीं आ सकते। लेकिन प्रथम श्रेणी के जो प्रेत हैं वे चूँकि स्वयं विद्वान् होते हैं और कुछ उनमें से चिल्ला भी

खींचे हुए होते हैं अतः वे सगे-सम्बन्धियों का रूप धारण करके आते हैं और कभी-कभी वे तीसरे घेरे में भी पाँव रख देते हैं। ऐसी अवस्था के लिए शाह साहब ने मुझे एक दूसरा मन्त्र बताया था कि जब ऐसा हो तो तीसरे घेरे के अंदर अपने चारों ओर एक चौथा घेरा उँगली ही से खींचकर मन्त्र पढ़कर प्रेत की ओर फूँक देना। और वह चले जायँगे।

... ...

मेरा मन्त्र अब समाप्त होने ही को था और महीने भर से अधिक हो चुका था। सिवाय उस प्रेत के जो मेरे पास छिपकली के रूप में आया था और कोई भूत-प्रेत नहीं आया।

शुक्रवार का दिन था। मैंने उठकर दीवार पर उन्तालीसवीं रेखा खींची। कल चालीसवें दिन चिल्ले की समाप्ति और कामना का था। यानी चिल्ला समाप्त होने पर मैं जो भी कामना करूँगा वह पूरी होगी। पास होने की कामना के अतिरिक्त अब मैं यह सोच रहा था कि क्यों न कोई दूसरी कामना भी उसी में सम्मिलित कर लूँ, परन्तु फिर यह सोचा कि शाह साहब ने कहा था कि केवल एक ही कामना के लिए चिल्ला खींचा जाता है और यद्यपि कई कामनायें एक साथ मिला लेने में विशेष हर्ज़ नहीं किन्तु आशंका अवश्य होती है क्योंकि कामना एक ही पूरी होती है। बहुत सोच-विचार के बाद मैंने निश्चय किया कि मैं दो कामनाओं की पूर्ति के लिए अल्लाह से प्रार्थना करूंगा।

एक तो अपने पास होने की और दूसरी अपनी मँगेतर से विवाह की। चाहे कोई भी पूर्ण हो, बात एक ही है।

गरज मैंने उस दिन सिर घुटवाया और नहा-धोकर प्रसन्नचित्त अपना मंत्र-जाप शुरू कर दिया।

दिन चढ़ रहा था और वास्तव में इसी समय अल्लाह चिल्ला खींचने वालों की प्रार्थना सुनने की ओर ध्यान देते हैं और मन्त्र पूरे वेग से पढ़ा जाता है। ठीक दोपहर का समय हो गया। मैं अपने मन्त्र-जाप में इतना तन्मय था कि तन-बदन की सुध नहीं थी। इस सन्नाटे की हालत में एकदम से मेरे कानों में आवाज़ आई "क्यों बे यह क्या ढकोसला ?" मैंने छत की ओर देखा और जब कुछ न पाया तो मेरे कान खड़े हो गये। मन में कहा कि प्रेत आ गये, फिर आवाज़ आई। अब क्या देखता हूँ कि सामने मकान की दीवार पर मुंशी रामसहाय खड़े हैं। मैं जान गया कि प्रेत आ गये और मैंने माला तेज़ी से फेरना शुरू किया और बजाय उत्तर देने के मैं दीवार की ओर देख रहा था। इतने में क्या देखता हूँ कि पिता जी भी दीवार पर आ गये। मैं बराबर मन्त्र-जाप कर रहा था पर मैं मन में अवश्य हंसा कि ये प्रेत मुझे उल्लू बनाते हैं। भला ये मेरा कर ही क्या सकते थे। मैं जानता था कि प्रेत प्रथम श्रेणी के हैं जो आश्चर्य नहीं कि तीसरे घेरे में घुस आयें। मुंशी रामसहाय वृद्ध आदमी थे और जब उन्होंने तीन बार और डाँटा और मैंने कुछ न सुना तो वे दीवार पर चलकर पाखाने के पास पहुँचे और वहाँ से उतरने लगे। मैंने

मन में कहा कि मुंशी रामसहाय का वेष तो इस प्रेत ने निस्सन्देह बड़ी सफलता के साथ बदला है, यहाँ तक कि आवाज़ भी बिलकुल मिला दी है पर इसने यह न सोचा कि भला एक वृद्ध आदमी किस तरह इतनी तेज़ी से दीवारों पर चल सकता है। सारांश यह कि ये दोनों प्रेत जो मेरे पिता जी और मुन्शी रामसहाय का वेष बदले हुए थे, पाखाने में से उतरकर मेरे निकट आ खड़े हुए किन्तु मैं उसी तरह मन्त्र के जाप में तन्मय था। मैं बड़े ग़ौर से मुंशी रामसहाय-रूपी प्रेत को देख रहा था जो कोई गड़बड़ी करने की तैयारी करते हुए दूसरे प्रेत को देखकर हँस रहा था। पर मैं मन में कह रहा था कि आओ मैं दोनों के लिए तैयार हूँ।

मेरे देखते-देखते मुंशी जी रूपी प्रेत ने एकदम से हंसना बन्द किया और ज़ोर से डपटकर "अबे पाजी" कहते हुए घेरे में डग रख दिया। फिर दूसरे घेरे में पाँव रखा। मैं तुरन्त समझ गया कि यह अवश्य ही प्रथम श्रेणी का चिल्लाकश (सिद्ध) प्रेत है और तीसरे घेरे में भी घुस आयेगा। मैंने फ़ुर्ती से उँगली से चौथा खास घेरा बनाया और विशेष मन्त्र पढ़कर उस धृष्ट प्रेत की ओर जो मुँह बढ़ाकर फूँका तो मेरे मुँह पर इस ज़ोर का एक चाँटा पड़ा कि मेरा मुँह फिर गया। मैं कुछ सोचने भी न पाया था कि मेरा कान उस भयानक प्रेत के हाथ में था और मेरी ताज़ी घुटी हुई खोपड़ी पर मुंशी रामसहाय का जूता बज रहा था। तड़ातड़, तड़ातड़ दो-तीन जूतों तक तो मैं यही समझा

कि यह प्रेत है और मैंने मन्त्र का जाप बन्द नहीं किया। पर जूता इस ज़ोर का पड़ रहा था कि तुरन्त ही वास्तविकता प्रकट हो गई। अर्थात् यह कि वास्तव में असली रामसहाय बड़ी बुरी तरह मेरा सिर गंजाकर रहे थे और बराबर यह कह रहे थे कि—'तूने मुझे बदनाम किया, तू इम्तहान के दिनों में भाग आया, यह सब तेरे नालायक बाप का क़ुसूर है, आज तुझको ज़िन्दा न छोड़ूगा, आख़िर यह तू क्या कर रहा था ? इत्यादि, इत्यादि।'

मुझे भिश्ती का नाम और पता बताना पड़ा जिसके पास कुंजी थी। बाहर जो इक्केवाला खड़ा था वह भिश्ती के पास से कुंजी लाया और हम लोग इक्के पर बैठकर अपने गाँव की ओर चले। जब मार की पीड़ा कुछ कम हुई तो मुझको अवकाश मिला कि अपने भाग्य को रोऊँ। यह तो मुंशी जी को बता ही चुका था कि यह मन्त्र इम्तहान में पास होने के लिए पढ़ा जा रहा था। अब मैं अपने मन में यह सोच रहा था कि भला मुझसे बड़ा अभागा कौन होगा कि जब सिद्धि प्राप्त होने में केवल एक दिन रह गया तब मुंशी जी ने आकर यह सितम ढाया। मेरा चिल्ला बीच ही में टूट चुका था और मुझे भय था कि कहीं मेरा जलाली मन्त्र अपूर्ण रह जाने के कारण मेरे ऊपर इस मार के अतिरिक्त जो पड़ चुकी थी कोई और विपद् न लाये। क्योंकि मुझसे शाह साहब ने कहा था मन्त्र अपूर्ण रह जाता है तो बहुधा लौट पड़ता है और फिर अनेक कष्ट देता है।

मैं घर पर पहुँचा तो मेरी माता जी ने मुझे गले से लगाया

और खूब रोईं। उन्होंने सब हाल सुनकर कहा कि तूने मुझे क्यों न बताया मैं तेरे लिए इससे बढ़कर मन्त्र पढ़वा देती।

पर मुंशी जी का यह हाल था कि दाँत पीस-पीसकर मेरे ऊपर दौड़ पड़ते थे और मारते थे। अब इम्तहान को केवल तीन दिन रह गये थे और इन तीन दिनों में मुंशी जी ने मेरे ऊपर वह अत्याचार किये कि मुझे विश्वास हो गया कि अवश्य ही मेरा मन्त्र मुझ पर लौट पड़ा और अब मेरी कुशल नहीं। गरज़ जो कुछ भी इस अल्प समय में सम्भव था वह मुंशी जी ने किया और मुझसे इम्तहान दिलवाया। परीक्षा-फल प्रकाशित हुआ। अब तक तो मैं केवल गणित में फेल हुआ करता था किन्तु इस बार प्रत्येक विषय में फेल रहा।

मुंशी रामसहाय का इक्का समय पर पहुँचा और उन्होंने उतरते ही मुझे मारते-मारते अधमरा कर दिया और फिर स्वयं बैठकर रोने लगे। मेरे पिता जी ने जब अपने पूज्य गुरु जी को रोते हुए देखा तो उनकी आँखों में खून उतर आया। "आज तुझे मार डालूँगा।" यह कहकर वे मेरे ऊपर टूट पड़े और मारते-मारते बे-सुध कर दिया। मुझे होश हुआ तो मैंने देखा कि मेरी माता और दादी मेरी सेवा-सुश्रूषा कर रही थीं और पिता जी तथा मुंशी जी को बुरा-भला कह रही थीं।

दूसरे ही दिन से मुझे खूब घी-दूध मिलने लगा और मैं और भी बन गया। झूठ-मूठ दुर्बल बना रहा। गरज़ कई दिन घर से

बाहर न निकला क्योंकि वह यम के दूत अर्थात् मुंशी जी मौजूद थे।

... ...

जब मैं ठीक हो गया तो बाहर बुलाया गया और मुंशी जी ने मुझसे कहा—"तूने जो चिल्ला खींचा था वह तो झूठा निकला, अब मेरा बताया हुआ चिल्ला खींच।" मैं समझा कि सचमुच कोई चिल्ला होगा। राज़ी हो गया।

मुंशी जी ने कहा—"मेरा चिल्ला बड़ा कठिन है, अच्छा खाना, अच्छा पहनना और खेल-कूद आदि सब बन्द हो जायगा। पर तू पास अवश्य हो जायगा।" मुंशी जी ने मेरी पीठ ठोंकी और कहा—"बस कल से चिल्ला शुरू है।"

दूसरे दिन से मुंशी जी ने अपना कठिन चिल्ला शुरू करा दिया। सुबह से शाम तक उन्होंने कूट-कूटकर मुझे पढ़ाया और खाने को केवल उबली हुई दाल और रोटी दिलवाई। यही उनका चिल्ला था। मालूम हुआ कि मुंशी जी उस समय तक यहीं रहेंगे जब तक कि गर्मियों की छुट्टी समाप्त होने के बाद स्कूल न खुलेगा। क्या कहूँ कि मैं कैसे संकट में फँसा था। दिन-रात मुंशी जी मुझे बाहर रखते और मार-मारकर पढ़ाते और फिर यह ज़ुल्म देखिए कि भोजन बहुत ख़राब दिलवाते। मैं छुट्टी को तरस गया क्योंकि मुंशी जी मुझे किसी भी समय नहीं छोड़ते थे। रात को भी चारपाई से चारपाई मिलाकर सोते और लेटे-लेटे ज़बानी प्रश्नों से तंग करते और उत्तर न मिलने पर तुरन्त

छड़ी रसीद करते। बारम्बार वे यही कहते कि मेरे चिल्ले की यही शर्त है।

जब स्कूल खुला तब मुझे मालूम हुआ कि अब नई मुसीबत आनेवाली है। यानी मैं बजाय घर पर पढ़ने के मुन्शी जी के घर पर रक्खा जाऊँगा। मेरे प्राण सूख गये। सारांश यह कि मैं मुंशी जी के घर पहुँचा जहाँ मेरे ऊपर दिन-रात मार पड़ती थी और पढ़ाया जाता था।

बड़ी मुसीबत थी। सिवाय दाल के कुछ खाने को न मिलता था। क्योंकि चिल्ले के बीच इसका निषेध था। यदि मेरे घर से कोई बढ़िया चीज़ आती तो पिता जी उल्लू और गधे बनाये जाते और वह चीज़ कुत्ते को डाल दी जाती, पर मुझे न मिलती क्योंकि मुंशी जी कहते थे कि—"यदि कोई चीज़ भी तूने खा ली तो चिल्ला बिगड़ जायगा।"

(७)

पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि इस चिल्लाकशी का क्या परिणाम हुआ होगा। मैं केवल अपने स्कूल या ज़िले ही में नहीं बल्कि पूरे प्रान्त में प्रथम रहा। मेरे पास होने की ख़ुशी में मुन्शी जी आये और एक ज़ोर का चाँटा मारकर कहा कि यदि तू अबकी बार भी फ़ेल हो जाता तो तुझे मार ही डालता और खुद भी मर जाता। गरज़ मेरे पास होने की ख़ूब ख़ुशी मनाई गई और ख़ूब मिठाई बंटी और मुंशी जी को कपड़े और रुपये भेंट किये गये।

मेरी इस शानदार विजय का सारे गाँव में डंका बज गया और प्रत्येक आदमी मेरी प्रतिभा का क़ायल हो गया—विशेषकर मेरे श्वसुर जी। बड़ी जल्दी मेरा विवाह किया गया जिसमें मुंशी जी भी शरीक़ हुए। मैंने वास्तव में विवाह के दिन सन्तोष की साँस ली जब कि मुंशी जी ने मुझे गले से लगाकर पक्का वादा किया कि अब तुझे कभी न मारूँगा।

... .

मैंने विवाह के बाद अपनी पत्नी से सख्त शिकायत की कि तूने और तेरे शाह साहब ने मुझे ऐसी सलाह दी कि पूरा वर्ष मुझे पिटते ही बीता।

कुछ भी हो। मेरी सलाह है कि यदि कोई महाशय जलाली चिल्ला खींचे और यदि प्रेत आयें तो कम से कम मन्त्र पढ़कर फूँकते समय अपना मुँह कुछ दूर ही पर रक्खें नहीं तो इस ज़ोर का चाँटा पड़ने का ख़तरा होता है कि उसका असर आजीवन बाक़ी रहेगा।

ग़लत-फ़हमी

मैं चार बजे की गाड़ी से घर लौट रहा था। दस बजे की गाड़ी से एक जगह गया था और चूँकि उसी दिन लौटना था, इसलिए मेरे पास सामान आदि कुछ नहीं था। केवल एक स्टेशन रह गया था; गाड़ी रुकी तो मैंने देखा कि एक साहब सेकण्ड क्लास के डिब्बे से उतरे। उनका क़द सच जानिये, छः फ़ुट से कम नहीं था। बड़ी-बड़ी मूँछें रोबदार चेहरे पर हवा से हिल रही थीं। नेकर और क़मीज़ पहिने हुए पूरे पहलवान जान पड़ते थे। वह किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। दूर से उन्होंने एक आदमी को (अपने नौकर को) देखा। देखते ही देखते उनका चेहरा क्रोध से लाल हो गया। मैं बराबरवाले ड्योढ़े दर्जे में बैठा था।

एक साहब ने उनकी भयंकर सूरत देखी और आप ही कहा—"यह ख़ूनी मालूम होता है !"

मैंने उनकी ओर देखा और फिर उन भयावनी शक्लवाले महाशय के क्रुद्ध चेहरे को देखा और मन ही मन उनकी राय का समर्थन किया। आप विश्वास करें कि उनकी आँखों से लपटें निकल रही थीं और नौकर के आते ही इस ज़ोर से उन्होंने उसको एक क़दम आगे बढ़ कर डाँटा कि वह डर कर एकदम

से पीछे हटा और गार्ड साहब से, जो उसके बिलकुल पास ही थे, लड़ते-लड़ते बचा। गार्ड साहब सीटी बजाना छोड़ कर, एक ओर को हो गये। उन्होंने एक खिसियाई हुई निगाह नौकर पर डाली और फिर उन महाशय की तरफ़ देखा। दोनों मुस्कराये। गाड़ी चल दी!

... ...

गाड़ी स्टेशन पर रुकी और मैं उतरा। वह महाशय भी उतरे। आप विश्वास करें कि मैं समझा कि मुझे कोई बला लिपट गई, जब उन्होंने एकदम से मुझे 'हा' करके लिपटा लिया। वास्तव में उन्होंने कहा था—"तुम कहाँ!" यदि उनकी तोंद कुछ नर्म न होती, तो शायद मेरी एकाध पसली अवश्य टूट जाती। छूटते ही पकड़ लिया और हँस कर बोले, "अब तुम्हें नहीं छोड़ेंगे।"

यहाँ यह कहना उचित समझता हूँ कि मुझको व्यर्थ की बकवास से जितनी नफ़रत थी (अब नहीं है) उतनी किसी चीज़ से न थी। देखता था कि लोग बातें कर रहे हैं। ख्वाम-ख्वाह एक दूसरे की बात काट रहा है और हर आदमी की यही कोशिश है कि सब लोग गुमसुम होकर मेरी ही बात सुनते रहें। कभी-कभी मेरी असाधारण खामोशी पर आपत्ति होती; मुझसे शिकायत की जाती कि मैं बातों में दिलचस्पी नहीं ले रहा हूँ; मैं मन ही मन कुढ़ता और भरसक मौन रहता।

ऐसी हालत में जब कि मेरा यह स्वभाव हो, जब उन्होंने मुझे

पकड़ कर कहा—'अब तुम्हें नहीं छोड़ेंगे,' तो सम्भव था कि मैं ख़ामोशी से काम लेता, किन्तु यहाँ तो बिना बोले काम ही नहीं चल सकता था। किन्तु इसके पहले कि मैं कहता कि जनाब आप कौन साहब हैं और मुझको क्यों पकड़ा है, आख़िर मुझको क्यों न छोड़ेंगे और कैसे न छोड़ेंगे, उन्होंने बिना मेरा जवाब, या मेरी बात सुने हुये बातचीत के सिलसिले को जारी रक्खा—"तुम बहुत दिनों बाद मिले हो—कहाँ थे...कैसे हो...वालिद साहब (पिताजी) तो अच्छे हैं...और लोग कहाँ हैं...१... अबे नालायक़...नामाक़ूल यह देख यह देख! आँखें खोल... अरे आँखें खोल कर..."

मुझसे बातें करते-करते वह नौकर पर बिगड़ने लगे थे। और जब उसकी ओर एक बार उन्होंने अपनी तोंद बढ़ाई, तब मेरा यह सन्देह दूर हुआ कि वह मुझ पर नहीं बिगड़ रहे थे। वास्तव में न उन्हें मेरे उत्तर की आवश्यकता थी और न मुझ में हिम्मत। कुछ लोग सचमुच हाज़िर-ज़वाब होते हैं। काश, मैं भी वैसा ही होता, तो शायद उनके एक सवाल के बाद और दूसरे सवाल से कुछ पहले मज़े से ताँगे में बैठा हुआ अपने घर की तरफ़ जा रहा होता। मैं अब ज़रा अपने आपको सँभाल कर उनसे भ्रम-निवारण करने के लिये शब्द खोज रहा था और इसमें मुझे काफ़ी कामयाबी होती भी प्रतीत होती थी। क्योंकि 'माफ़ कीजियेगा, मैंने पहिचाना नहीं' तो बहुत उपयुक्त शब्द थे, जो मुझको मिल गये थे। और मैंने कहा—"माफ़ कीजियेगा..."

पर उन्होंने बात काट कर तुरन्त कहा—"जी नहीं···यह नामुमकिन है।" और फिर इसी सिलसिले में कहा—"असबाब नहीं है?" और जवाब का इन्तज़ार किये बिना, फिर आप ही आप उन्होंने कहा—"शायद दिन भर के लिये आये होगे। खैर, कोई हर्ज़ नहीं। अब दो-तीन दिन तुम्हें न छोड़ूँगा।" एक ठहाका लगाया और बड़े ज़ोर से कहा—"मैं नहीं छोड़ूँगा, नहीं छोड़ सकता।"

मैंने मन में सोचा कि भागूँ—हाथ छुड़ाकर; पर एक तो मेरी पतली कलाई फ़ौलादी पंजे में थी और फिर स्टेशन की भीड़; सोचा कि सफलता न मिलेगी!

मेरा हाथ पकड़े मुझको ले जाकर उन्होंने अपने साथ गाड़ी पर बैठाया। गाड़ी पर बैठते समय मैं ज़रा रुका कि कहूँ, 'जनाब, आप मुझको क्यों और कहाँ लिये जाते हैं?' मैंने ज़रा गला साफ़ करके कहना चाहा था कि उन्होंने हाथ पकड़ कर जैसे ज़बरदस्ती गाड़ी में बैठा दिया और स्वयं भी बैठ गये। बैठते-बैठते कहने लगे—"मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा...वालिद साहब तो खैरियत से हैं न?"

मैंने कहा—"खैरियत से हैं और..."

वह बात काट कर बोल उठे—"और सब?" और फिर कहा—"सब अच्छी तरह हैं...अरे मियाँ, यह क्या वाहियात बात है, सुना है कि तुम्हारे वालिद ने एक और शादी कर ली है। यह ख़बर कहाँ तक सही है?"

"इलाही ख़ैर !" मैंने मन में कहा—क्योंकि मेरी माँ की मृत्यु बहुत दिन पहले हो चुकी थी। लेकिन फिर भी ख़ुदा की मेहरबानी से दो-दो माताएँ मौजूद थीं। क्या यह सम्भव है कि अब्बाजान की आबादी-पसन्द तबीअत ने...या फिर, मुझ जैसे बिना माँ के बच्चे के हाल पर तरस खाते हुए दो माताओं को काफ़ी न समझते हुए उनमें एक की और वृद्ध की हो। मैंने कुछ हकलाते हुए कहा—"मैं...मुझे नहीं मालूम।" और सहसा मैंने सोचा कि इन महाशय को शायद मैंने पहिचाना नहीं। और इनकी सब बातें कहीं उचित तो नहीं। आख़िर क्यों न मैं माफ़ी माँग कर, भविष्य के लिए परिचय प्राप्त कर लूँ? पर मेरे कम बोलने (अब तो बहुत बोलता हूँ) और सवाल करने के बचने की आदत ..(अब तो तुरन्त सवाल करता हूँ)...का ख़ुदा भला करे, यह मुझमें कमज़ोरी थी। मैंने तुरन्त अनुभव किया कि यह तो ऐब है, जिसको मैं गुण समझता रहा। किन्तु कहीं इन बातों के विषय में सोचने से वाक्-शक्ति थोड़े ही आ जाती है !

मैं यही सोचता रहा कि अब इनसे मामला साफ़ करूँ और अब पूछूँ कि गाड़ी एक कोठी के फाटक में दाख़िल हो गई। मुझे बहाना मिला और सोचा कि अब इतमीनान से इनसे माफ़ी माँगूँगा कि महाशय मैंने आपको नहीं पहिचाना। गाड़ी बाग़ में दाख़िल हुई और वह महाशय बोले—"पिछली बार जब तुम आये थे, तो तुमने वह अंगूर की बेल न देखी होगी...इसकी जड़ में तीन बन्दरों के सिर गड़वाये हैं।"

मैं भला, इसका क्या उत्तर देता ? क्योंकि ज़िन्दगी में पहली बार यहाँ आया और वह भी पकड़ा हुआ। आश्चर्य के साथ मेरे मुँह से निकल गया—"बन्दर !"

उन्होंने कुछ गर्व के साथ शायद इसी आशा से कहा कि मैं उनसे आश्चर्य के साथ पूछूँ कि साहब, बन्दरों ने क्या ख़ता की, जो उनके सिरों के साथ यह निर्दयता-पूर्ण व्यवहार किया ! और जब वह कुछ उचित कारण बतायें, तो मैं उनकी जानकारी पर चकित रह जाऊँ। शायद उन्होंने इसी ख़याल से कहा—"जी हाँ, बन्दर...बन्दरों के सिर !"

पर मेरे चुप रहने से उनकी आशा पर पानी फिर गया। और वह स्वयं बोले—"आपको पता नहीं...मैं दरअसल बाग़-बानी पर एक किताब लिख रहा हूँ। बात यह है कि बन्दर के सिर की खाद अंगूर के लिये लाजवाब होती है।"

मैं भला, क्या कहता। दिल में सोचने लगा कि भविष्य में यदि अंगूर मिलें, तो खाऊँ या न खाऊँ ?

बाग़बानी का ज़िक्र छोड़ कर उन्होंने कहा—"वह देखो, पर्सी की क़ब्र है।" अँगुली उठा कर उन्होंने एक चौखूँटे चबूतरे की ओर मुझे दिखाया।

अंग्रेज़ों की क़ब्र मैं पहले भी कई बार देख चुका था। कोई नई बात नहीं थी। पर्सी, हाँ इस नाम से भी परिचित था। जो लोग भी अख़बार पढ़ते रहे हैं, वे सर पर्सी काक्स, ईराक़ के हाई कमिशनर के नाम और उनकी राजनैतिक चतुराई से परि-

चित होंगे। पर उनकी क़ब्र यहाँ कैसे? उनके कोई सम्बन्धी होंगे शायद, मैंने सवाल करने बजाय अपनी आदत के अनुसार यह सोच कर सन्तोष कर लिया। हम बरामदे के पास पहुँच रहे थे, गाड़ी बिलकुल आहिस्ता-आहिस्ता चल रही थी। वह कहने लगे—"मुझे पर्सी के मरने का बहुत दुःख हुआ और एक दिन मैंने खाना नहीं खाया।"

मुझे पूरा विश्वास हो गया कि इनकी मिस्टर पर्सी से दोस्ती रही होगी। इतने में मैंने देखा कि एक छोटा-सा कुत्ता दौड़ता हुआ गाड़ी के पास पहुँचा।

बंगला अभी बहुत दूर था और यह मालिक के स्वागत को आया था। मैं ग़ौर से देख रहा था कि यह कटखना कहाँ तक हो सकता है कि वह बोले—"यह देखिये, यह ग़रीब रह गया और पर्सी मर गई। बड़ी लाजवाब कुतिया थी।"

इधर मैं चकित था, और उधर वह तारीफ़ के लहजे में कहने लगे—"आप यह खयाल कीजिये कि इतनी सी कुतिया थी, पर अकेली कुतिया को मार डालती थी और फिर एक तारीफ़ और भी थी, वह यह कि अगर कहीं कोई अजनबी बङ्गले के अहाते में नज़र पड़ जाये, तो बस, उसकी ख़बर ही ले डालती थी।"

मैं चौंका। मन में कहा कि अच्छा हुआ, पर्सी मर गई। नहीं तो आज मेरा भी बुरा हाल करती। फिर सोचा कि यह कुत्ता भी तो उसी के साथ का है! मैं कुत्तों से बहुत डरता हूँ और

विशेष कर नालायक कुत्तों से, जो यद्यपि कटखने न हों, पर दौड़ते हैं इस बुरी तरह कि आदमी के होश उड़ जाते हैं और वह गिर पड़ता है। मैंने पर्सी की क़ब्र की तरफ़ इतमीनान के साथ देखा और फिर कुत्ते यानी स्वर्गीया पर्सी के पति को देखा। इतने में गाड़ी बरामदे से आकर लगी, और मैंने देखा कि एक भयानक बुलडॉग अँगड़ाई लेकर उठा। इतने में हम दोनों उछल पड़े। छोटा कुत्ता तो दुम हिला-हिला कर अपने स्वामी के चरणों में लोट रहा था; पर यह गम्भीर महाशय यानी बुलडॉग साहब मेरे प्राण सुखाने में व्यस्त हो गये, अर्थात् बरामदे से उतर कर उन्होंने मुझे सूँघा। मेरी साँस रुक गई और चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

उन्होंने तुरन्त ताड़ लिया और मुस्करा कर कहा—"अजी, यह तो वही पुराना टामी है। बस, सूरत ही डरावनी है। काटना तो कमबख्त जानता ही नहीं। बहुत किया इसने और बड़ी बहादुरी दिखाई, तो बस लिपट पड़ता है।" उन्होंने मेरी घबराहट पर एक ठहाका लगाया, क्योंकि मैं फाँद कर गाड़ी में पहुँच चुका था।

"लाहौल वला क़ूवत! कुत्तों से तुम्हारा डर नहीं गया। यह तो वही पुराना टामी है।" यह कहते हुए उन्होंने मुझे हाथ पकड़ कर गाड़ी से उतारा और मुझे तेज़ी से बेतकल्लुफ़ी के साथ कमरे में प्रवेश करना पड़ा। सौभाग्य से कुत्तों ने एक गिल-

हरी को देख पाया, जिसके पीछे वे ऐसा दौड़े कि दृष्टि से ओझल हो गये। मैंने सन्तोष की साँस ली।

... ...

पहुँचते ही उन्होंने आवाज़ दी—"खाना लाओ।"

खुदा ख़ैर करे! मैंने दिल में कहा कि यह खाने का कौन समय है? बहुत जल्द हाथ धोये गये। इनकार से भला, वे काहे को मानते, अतः मैं चुप रहा।

खाने की मेज़ पर गर्म किया हुआ पुलाव, शामी कबाब, अण्डों का कोरमा और दूसरे खाने थे। मैं प्लेट के एक ओर से चावल उठा कर दूसरी ओर रख कर टीला-सा बनाने लगा और उन्होंने तेज़ी से चावल खाना—नहीं नहीं; मैंने ग़लत कहा, बल्कि चावल पीना शुरू किये। शायद वह चबाना नहीं जानते थे।

"आरिफ़ मियाँ कहाँ हैं?" चिल्ला कर उन्होंने नौकर से कहा—"उनको जल्दी बुलाओ।" और मेरी ओर मुस्करा कर कहा—"तुम्हारा भतीजा तो आया नहीं। नहा रहा होगा, नहीं तो वह ज़रूर मेरे साथ खाना खाता है।"

आप विश्वास करें कि मैंने इधर-उधर भागने की नीयत से देखा। भतीजा! यह शब्द मेरे लिये शेर शब्द से कम नहीं था और फिर खाना खाते समय जिसके एक न दो, बल्कि सगे-सौतेले सब मिलाकर साढ़े चौदह भतीजे हों, उससे पूछिये कि ऐसी दुनिया अच्छी, या नरक? ख़ुदा जाने, पापियों का कष्ट बढ़ाने के लिए वहाँ नरक में भी भतीजे होंगे कि नहीं? यदि मेरे भतीजे

स्वर्ग में गये, तो मैं नरक में जाने को बहुत अधिक पसन्द करूँगा। मैं अतिशयोक्ति से काम नहीं लेता, क्योंकि चौदह-पन्द्रह भतीजे और सब एक जगह रहते हों, तो बेचारे चाचा का जो हाल होगा, उसका स्वयं अनुमान कर लीजिये ! वैसे ही मेरी जान घर के चौदह-पन्द्रह भतीजों ने क्या कम मुसीबत में डाल रक्खी थी, जो यह एक और निकला ? कोई आत्म-हत्या करता, तो मैं यह पता लगाने की कोशिश करता कि उसके कितने भतीजे हैं। एक हो तो ख़ैर, नहीं तो दो होने की हालत में तो मुझको आत्म-हत्या का कारण जानने में देर न लगती थी। भतीजा शब्द के मानी कुछ भी हों, पर मेरी समझ में यमदूत या उनके सेक्रेटरी का नाम भी भतीजा होना चाहिये। मैं इस फिलॉसफी पर विचार कर रहा था कि वे बोले—"तुम्हारे अब कितने बच्चे हैं ?"

मैं इसका क्या उत्तर देता, क्योंकि मेरा विवाह ही नहीं हुआ; लेकिन शायद उनको जवाब की आवश्यकता ही न थी। क्योंकि तुरन्त ही उन्होंने मेरे जवाब की राह देखे बिना ही कहा—"तुम्हारी बीवी कहाँ हैं ? तुम्हारे कितने बच्चे हैं ?" उन्होंने बहुत ज़ोर देकर पूछा—"तुम्हारे कितने बच्चे हैं ?"

विवश होकर मुझको असली बात बतानी पड़ी कि एक भी नहीं।

चावल का बड़ा-सा कौर, जो उन्होंने मुँह में रक्खा ही था "अरे" के साथ निगल कर बोले—"अरे...दोनों...दोनों बेचारे...यह आख़िर कब ? . भई, बात तो यह है कि ख़ुदा अगर

बच्चे दे, तो ज़िन्दा रहें, नहीं तो उनका होना और फिर मर जाना तो...ख़ुदा की पनाह !"

वे शायद मेरे प्रति अपनी सहानुभूति का प्रदर्शन कर रहे थे; बोले—"तुम्हारी बीबी का न जाने क्या हाल होगा ?"

आप स्वयं सोचिये कि मुझे भला, क्या पता कि वह लड़की किस हाल में होगी, जो भविष्य में मेरी पत्नी होगी और मैं स्वयं अनभिज्ञ था, तो भला, उनको क्या बताता कि उसका क्या हाल होगा, कि इसी बीच में वह आ गया। कौन ? अजी वही यमदूत या नरक का सेक्रेटरी यानी मेरा मुँह-बोला भतीजा आरिफ़ ! मैं घबराया, क्योंकि वह तीर की भाँति पापा-पापा का नारा लगाता हुआ चला आ रहा था। मैं सँभल बैठा और बचाव के उपायों और सम्भावनाओं पर विचार करने लगा; परन्तु उसका रुख़ बदल गया। वह अपने पापा पर गिरा और तेज़ी से वह भी पुलाव पीने में व्यस्त हो गया।

पिता महाशय ने सुपुत्र से कहा—"तुमने चाचा को न तो सलाम किया और न टाटा किया,.... टाटा करो।" कई बार फिर तक़ाज़ा हुआ—"सलाम करो, टाटा...करो . सलाम।" दूसरे शब्दों में मुझसे तक़ाज़ा हो रहा था कि भतीजे से बोलो। पर जनाब, मुझसे यह होना असम्भव था। एक तो वैसे ही मौन स्वभाव का आदमी था (अब नहीं) और भरसक बिना बात-चीत किये ही काम निकालना चाहता था; फिर वैसे भी भतीजों को आशीर्वाद देने के ख़िलाफ़। यह न समझिये कि मैं ख़ुदा न

करे, यह चाहता था कि वे मर जायँ। अजी, हज़ार वर्ष जीवित रहें; परन्तु मेरी दुआ की उन्हें आवश्यकता न रहे तो अच्छा है। बार-बार के तक़ाज़े से तंग आकर अन्त में भतीजे साहब ने मेरी छाती पर कोंदों दल ही डाली। यानी अपना सीधा हाथ जो पुलाव के घी में तर था, मेरे घुटने पर रख कर अपना बायाँ हाथ 'टाटा' के लिए बढ़ा दिया। मैं अवाक् रह गया। अपने साफ़ पतलून पर चिकनाई का धब्बा देख कर मेरी आँखों में खून उतर आया, क्योंकि मेरे पास यही एक अच्छा पतलून था जिस पर भतीजों की कृपा-दृष्टि नहीं पड़ी थी। इधर तो मैंने घुटने पर से चावल साफ़ किये और उधर उन्होंने कहा—"हयँ, उलटे हाथ से।" काश, कि वह भतीजे महाशय पहले ही टाटा (मुसाफ़ा) के लिए दाहिना हाथ बढ़ाते और बायाँ शौक़ से मेरे घुटने क्या, गले पर रख लेते। मैंने लाचार होकर हाथ मिलाया और मन में कहा—'ज़ालिम, तूने मुझे बेमौत मार डाला! मेरे पास यही तो एक अच्छा पतलून था, जिसे तूने इस प्रकार खराब कर दिया!

मैंने सन्तोष की साँस ली, जब कि यह भतीजे महाशय 'बिल्ला, बिल्ला' कह कर खाना छोड़ कर एकदम से भागे। या तो वह तेज़ दौड़ता ही होगा, या फिर यह बात बिलकुल सत्य है कि लाहौल पढ़ने से शैतान बुरी तरह भागता है। मैं लाहौल पढ़ रहा था और उसके प्रभाव का मन ही मन क़ायल हो रहा था।

"आपने हड्डी की तिजारत क्यों छोड़ दी ?" उन्होंने एक हड्डी का गूदा निकालते हुए कहा।

पाठक सोचें कि हड्डी का व्यवसाव मैं छोड़ता तो तब, जब कि मैंने कभी यह व्यापार शुरू किया होता। कहना चाहा कि कहूँ—जनाब, मुझे भला हड्डी की तिजारत से क्या ताल्लुक ? पर राम भजिये, वे अपने सारे सवालों के जवाब आरम्भ ही से स्वयं दे रहे थे, या फिर जवाब की प्रतीक्षा किये बिना दूसरा सवाल कर देते थे। मुझे भला, कोई सुवर्ण अवसर क्यों देते, जो मैं छुट्टी पाता। इसके पहले कि कौर खत्म करके उत्तर दूँ, उन्होंने कहा—"तिजारतवाला तिजारत ही करता है, हड्डी की न सही, पसली की सही।"

यह कह कर उन्होंने ज़ोरों का ठहाका लगाया। मैं उनके गले की गहराई पर विचार कर रहा था कि वह आ पहुँचा, यमदूत...वह ज़ालिम बल्ला हाथ में लिये हुए चिंघाड़ता हुआ और खाना शुरू करने के बजाय, बल्ले की तलवार बनाकर पैंतरे बदल-बदल कर नाचने लगा। वह मानो पटे के हाथ निकाल रहा था। मेरे मेज़बान या सैयद (बहेलिया) अपने कार्य में पूर्ववत् व्यस्त रहे। हाँ, यदि वह चावल पीने के स्थान पर खाते होते, तो हँसी के कारण उनके गले में अवश्य फन्दा पड़ जाता; क्योंकि उनकी समझ में खाना खाने में हंसी से कोई हर्ज नहीं होता। वे खूब हँस रहे थे; कहने लगे—"ज़रा इस शरीर को तो देखिये।"

मैं इसका क्या उत्तर देता; क्योंकि देख तो रहा ही था और जानता था कि जो क्षण बीत रहा है, अच्छा है। विनवट का क़ायदा है कि सारा खेल बस निगाह का होता है। शत्रु से जब तक आँख मिली रहे, या शत्र की गति पर जब तक नज़र जमी रहे, उस समय तक खैरियत है, नहीं तो इधर आँख झपकी और उधर मार खाई। अभी तक यह सुनता ही था, पर आज सिद्ध हो गया। दो बार उसका बल्ला मेरे सिर पर से होकर निकल गया, और यदि मैं सिर न बचाऊँ, तो सिर की कुशल नहीं थी। उन्होंने केवल 'हाय' कहा। मैं एकटक उस दुष्ट भतीजे की ओर देख रहा था कि मेरे मित्र मेज़बान ने मेरे कम खाने की शिकायत करते हुये; कहा—"यह लीजिये, कबाब नहीं खाया।" इधर मेरी दृष्टि चूकी और उधर इस ज़ोर से मेरे मुँह पर बल्ला पड़ा कि मेरी नाक पिच्ची हो गई; नहीं बल्कि मुझे ऐसा जान पड़ा कि शायद मेरी नाक ऐनक के साथ उड़ी चली गई। तुरन्त पहले तो मैंने अपनी नाक को देखा और उसको अपनी जगह पर मौजूद पाकर लपक कर मैंने ऐनक उठाई। भतीजे साहब भी गिर पड़े थे। ऐनक की एक कमानी टूट गई थी! 'या अली' कह कर उन्होंने अपने पटेबाज़ को सँभाला और मैंने अपनी ऐनक को।

"तुम बड़े नालायक हो।" डाँट कर उन्होंने लड़के से कहा। मुझसे माफ़ी माँगी और फिर लड़के से कहा कि माफ़ी माँगो। यद्यपि मैं स्वयं उनसे माफ़ी और पनाह माँग रहा था।

वह चुप हुआ तो कहा—"अच्छा, अब जाओ और अपनी अम्मीं जान से कहना कि हामिद चचा आते हैं।"

इधर उन्होंने यह कहा और उधर मैं बेचैन हुआ, क्योंकि हामिद मैं बिलकुल नहीं था। इधर मुझे अपना नाम मालूम हुआ और उधर मेरी तबीअत परेशान होने लगी।

... ...

भोजन करने के बाद हम बरामदे में आये, और मैं कुछ कहने ही को था कि उन्होंने एक बड़ा सिगार सुलगाया और दूसरा मुझे दिया। मैंने इनकार किया, तो आश्चर्य के साथ बोले—"अरे? तुमने छोड़ दिया? यह कैसे? पहले जब आये थे, तब तो ख़ूब पीते थे। भई वाह, कमाल कर दिया। बहुत अच्छा किया; भई, बहुत अच्छा किया। वाक़ई ख़राब चीज़ है।" फिर एक छोटा-सा लेक्चर तम्बाकू के नुक़सान पर देते हुये कहा—"अब तुम भी अचकन उतार कर ज़रा हाथ-मुँह धो डालो।"

वास्तव में हम दोनों बाहर से आने के बाद सीधे भोजन पर टूट पड़े थे। इतने में उन्होंने चिल्ला कर कहा—"अरे भई, टामी को क्यों बाँध दिया? कोई है?"

एक आदमी आ खड़ा हुआ। उससे उन्होंने पूछा—"टामी को क्यों बाँध दिया?"

उसने मेरी ओर इशारा करके कहा—"आपकी वजह से···।"

उन्होंने कहा—"बकते हो, उसको फ़ौरन खोलो, यह वक़्

कुत्तों के बाँधने का नहीं है।" फिर मेरी ओर देख कर कहा—"दरअसल यह वक्त तो खास तौर से कुत्तों के खोलने के लिए है।···देख, छोटे कुत्ते को भी।" यह नौकर से कहा।

मैंने मन में कहा कि एक नहीं दो-दो मुसीबतें हैं। ख़ुदा ख़ैर करे! न जाने कुत्तों के मालिकों को कुत्तों के छोड़ने में क्या आनन्द आता है? यह नहीं देखते कि वह आने-जानेवाले पर दौड़ते हैं।

"आइये, बाग़ में चलें।" उन्होंने मुझसे कहा। झुटपुटे का समय था और मैं उठने ही को था कि एक बहुत सुन्दर युवती गुलाबी कपड़े पहिने निकलीं। मैंने देखा ही था कि "अरे" कह कर वह एकदम से लौट गई। मेरे मेज़बान घबराये। इधर घूम कर देखा, हँसे और बोले—"आओ भाई, आती क्यों नहीं हो?" दूसरी ओर करवट बदल कर मुझसे बोले—"बहुत दिन हो गये, शायद तुमको पहिचाना नहीं, तुम बहुत बदल भी तो गये हो।" मेरी तरफ़ बड़े ग़ौर से देख कर बोले और फिर कहा—"अरे आती क्यों नहीं हो···बड़ी अहमक़ हो।" यह कहते हुए उठे।

अब मेरे लिये भागने का बहुत अच्छा मौक़ा था, क्योंकि वह कमरे में गए। मैं चाहता ही था कि इस सुवर्ण अवसर का उपयोग करूँ कि क्या देखता हूँ कि वही भयानक कुत्ता टामी दोनों छोटे कुत्तों के साथ डाकगाड़ी की चाल से इसी ओर चला आ रहा है। या अल्लाह, मैंने सोचा—अब मैं क्या करूं! एक

तरफ़ से कुत्ते आए थे और दूसरी तरफ़ से बेगम साहिबा से मिलकर ग़लतफ़हमी दूर होनेवाली थी। अगर कुत्तों ने मुझको घेर न लिया होता, तो मैं भाग गया होता! यह सिर्फ़ एक बड़ा गमला फाँदने से सम्भव था। मैंने गमले की ऊँचाई पर नज़र डाली।

मैंने कुत्तों की ओर देखा, फिर गमले की तरफ़;···दिल में सोचा कि फाँद जाऊँगा और बाईं ओर से घूम कर अहाते की दीवार पर से निकल जाना मुमकिन है···वह आ गए··मैं जानता था कि यदि उन्होंने घूँसा मारा, तो मैं कलाई से रोकूँगा, कलाई तो टूट ही जायगी, पर मुँह बच जायगा। उन्होंने अपने जूते की चमक को देखा। मैंने कमरे की तरफ़ देखा कि बेगम साहिबा झाँक रही हैं कि नहीं।

"माफ़ कीजियेगा।" मेरे मेज़बान ने बड़ी नम्रता से कहा—"शायद ग़लतफ़हमी ··मुझको ग़लतफ़हमी हुई।"

मैंने सिर झुका कर कहा—"मुझको ख़ुद अफ़सोस है!"

"जनाब का नाम?" उन्होंने पूछा।

मैंने अपना नाम और पूरा पता बताया।

वह एकदम से बोले—"आपके वालिद साहब (पिताजी)··· ओफ़्फ़ोह!···आपके वालिद साहब से तो मेरी बहुत पुरानी जान-पहिचान है, आपसे मिलकर बहुत ख़ुशी हुई।"

मैंने बिदा चाही, तो उन्होंने रुकने का आग्रह किया। पर मैं न माना, तो कहने लगे कि गाड़ी तैयार कराये देता हूँ। पर मेरा दुर्भाग्य कि मैं न माना। थोड़ी दूर तक बाग़ के पहले मोड़

तक वह मुझको बिदा करने आये और फिर आने का वचन लिया। वह तो लौट गये और मैं तेज़ी से फाटक की ओर चला। मगर जनाब, वह अपने कुत्तों को अपने साथ न ले गए। वह दुम हिलाते और कान फड़फड़ाते मेरे पीछे चले आ रहे थे। मेरा जी घबराने लगा। मैंने अपनी चाल कुछ तेज़ की। कुत्ते भी तेज़ हुए। मैं और तेज़ हुआ, तो वे और भी तेज़ हुये; विवश होकर मैं भागा, तो वे भी भागे। अब मैं ऐसा सरपट भाग रहा था कि मुझको सिर पैर की ख़बर नहीं थी। नज़र कमज़ोर होने के कारण ऐनक लगाता था, बिना ऐनक के रास्ता धुँधला दिखाई देता था। फिर अँधेरा भी हो रहा था। पर जनाब, जिसके पीछे कुत्ते लगे हों, वह खाई-खन्दक़ नहीं देखता। कुत्तों से बचने के लिये मैंने जान तोड़ कोशिश की और फाटक की राह छोड़ कर एक तरफ़ अहाते की दीवार नीची देख कर उस तरफ़ भागा। कुत्ते अब केवल दौड़ ही नहीं रहे थे, बल्कि भौंक भी रहे थे। नर्म-नर्म कूड़े के ढेर पर मैं तेज़ी से चढ़ा और अपनी जान से हाथ धोकर ऐसा बेतहाशा भागा कि दीवार को बिना देखे पार कर गया। घूरे और कूड़े पर से लुढ़कता हुआ कोई पन्द्रह फुट की गहराई में गिरा। बौखला कर उठा और गिरा। ऊपर देखा, तो यह देख कर सन्तोष हुआ कि कुत्ते ऊपर ही रुक गये और फिर वहाँ से जैसे भी बन पड़ा, जान बचा कर ऐसा भागा कि सड़क पर आकर दम लिया।

खो गया

स्टेशन पर टिकट सँभालते हुए श्रीमतीजी ने कहा—"देखो, सफ़र लम्बा है और इण्टर क्लास की गड़बड़। कहीं खो न जाना फिर!"

मैंने ग़ौर से उस मूर्ख पत्नी को देखा। पुरुष के लिये क्या यह अपमानजनक बात नहीं? अरे, ओ मूर्ख स्त्री, ज़रा सोच तो कि यह नक़ाब मुँह से उठा कर सिर पर डालते ही तेरे होश जाते रहे हैं, जैसे पर निकल आये!

मैंने कुछ बिगड़ कर कहा—"हम कोई बच्चा तो हैं नहीं।"

"माफ़ कीजिये।" श्रीमतीजी ने व्यंगात्मक स्वर में कहा—"जैसे आप कभी पहले खोये थोड़े ही हैं।"

मैं क्या बताऊँ कि मुझे कितना ग़ुस्सा आया। ज़रा, कोई इस भली स्त्री से पूछे कि नेकबख्त, पहले तू यह बता कि तेरा मियाँ तुझे पहुँचाने जा रहा है या तू उसे पहुँचाने जा रही है? वह तेरा ज़िम्मेदार है, या तू उसकी रक्षक और ज़िम्मेदार है? मैं स्वीकार करता हूँ कि यात्रा में एक बार मुझसे लोटा खो गया; दो बार कुछ नकदी चोरी चली गई; एक दफ़ा कोई दुष्ट सोते में जूता लेकर चम्पत हो गया; और एक बार कोई अल्लाह का नाम लेकर बिस्तर ही लेकर लम्बा हुआ। एक दफ़ा टिकट खो गया,

और एक स्टेशन पर संयोगवश मैं स्वयं रह गया। यह कहना कि ये सब चीजें न तो चोरी गईं, न रह गईं, बल्कि खो गईं, कहाँ तक ठीक है? यह भी मैं माने लेता हूँ, परन्तु आप स्वयं न्याय करें कि मैं यह कैसे मान लूँ कि मैं भी रह नहीं गया, बल्कि खो गया था? लहौल वलाक़ूवत! कोई बैल बधिया हो गया, या ऊँट खच्चर हो गया, जो मैं खो गया। दुनिया-जहान के पति और अच्छे-अच्छे ग्रेजुएट सफ़र की गड़बड़ और चक्कर में स्टेशनों पर रह जाते हैं, तो क्या उनकी पत्नियाँ यही कहती फिरती होंगी सबसे कि पति महोदय खो गये? मुझे उस मूर्ख पत्नी पर क्रोध आया, कि देखो तो इसके निकट रह जाने और खो जाने में कोई अन्तर ही नहीं है। अतः मैंने झल्लाकर कहा—"फ़िज़ूल बातें मत करो!"

(२)

दो कुली थे। श्रीमतीजी ने कहा था कि जल्दी से बैठेंगे, जिससे कहीं जगह न घिर जाय। मैंने उनकी राय का समर्थन किया था और दुर्भाग्य से रेल में शीघ्रता से बैठने तथा बैठाने का ज़िम्मेदार अपने को समझे हुए था। अतएव जैसे ही गाड़ी आई, कुलियों को जल्दी की ताक़ीद करके मैं ज़नाने इण्टर की ओर चला। अब इन बुद्धिमान पत्नी की मूर्खता देखिये। हम यह समझे कि हम प्रबन्धक हैं, और वे समझीं कि यह मूर्ख है, और मैं ज़िम्मेदार हूँ। परिणाम यह हुआ कि एक कुली को लेकर मैं पहुँचा ज़नाने इण्टर के पास और दूसरे कुली को लेकर वे पहुँचीं मर्दाना दर्जे में। हम तेज़ी से असबाब जो रखवाते हैं, तो

क्या देखते हैं कि दूसरा कुली और श्रीमतीजी ग़ायब। कल्पना भी न थी कि ऐसा होगा। कुछ प्रतीक्षा की और फिर उसी जगह आ गये लौट कर, जहाँ खड़े थे। पर कुछ फल न हुआ। वही मामला हुआ, जैसे घरवाली खो गई। इसका तो हमें सन्तोष है कि किसी बुद्धिमान के भाग्य ने यदि कहीं धक्का खाया, और वह उन्हें ले गया, तो न केवल वह इस झंझट को लेकर पछतायगा, बल्कि खुशामद करके वापस ही करते बनेगा। खैर!

अब मामला यह हुआ कि प्लेटफ़ार्म पर हम बौखलाये फिर रहे थे कि दूसरे कुली ने हमें पहिचान लिया और बताया कि मर्दाने इण्टर क्लास में सामान लगा दिया गया है। बाक़ी सामान भी लेकर वहीं चलिये। अतः पहुँचे हम। मालूम हुआ कि यहीं बैठना है। खैर, कोई हर्ज नहीं। अकसर ऐसा करते हैं और कोई तकलीफ़ नहीं होती। सिर्फ किसी कानी-कुतरी सुन्दरी की ओर अवश्य नज़र उठाने का साहस नहीं होता। दो तेज़ और शक्की आँखें, दो अबोध तथा कमज़ोर आँखों पर पहरा लगाये रहती हैं। इधर किसी नकटी-चपटी स्त्री के पाँव के जेवर की आवाज़ छम्म से आई नहीं कि उधर श्रीमतीजी की आँखें बिना उस स्त्री को देखे हुए मेरी आँखों पर गड़ जाती हैं कि कहीं मैं उसे देख तो नहीं रहा हूँ।

सारांश यह कि शेष सामान भी यहीं आ गया। जगह काफ़ी थी, और अब हम जम कर बैठ गये निश्चिन्तता से। और फिर बहुत जल्द हमें यह भी मालूम हो गया कि ऐसा क्यों किया गया

है। सिर्फ़ इसलिये कि न तो हम कहीं स्वयं खो सकें और न लोटा-ओटा फेंक सकें। फिर सब से बड़ा कारण यह बताया गया कि तुम्हें बार-बार पैसे-पैसे के लिये दौड़ कर के आना पड़ता।

हमने कहा कि 'हिन्दुस्तान टाइम्स' खरीदेंगे ताकि ताज़े समाचार पढ़ सकें। जवाब में हमें 'इलस्ट्रेटेड वीक्ली' दिया गया, जो पाँच-छः दिन का बासी था और कुली से पहले ही मंगवा लिया गया था। अब यह हुक्म हुआ कि "देखिये, इसमें ख़बरें!" यद्यपि स्वय उन्हें ही उसके चित्र देखने थे। हमने कहा कि यह पुराना है, तो जवाब मिला कि सब ठीक है। और फिर जब हमने ताज़े समाचारों के लिये कहा, तो जवाब मिला कि जल्दी क्या है। ख़बरें आगे चल कर किसी से पूछ लेना, नहीं तो कोई खरीदे, तो उससे माँग कर पढ़ लेना। चलिये, छुट्टी हुई। ख़ैर, सब्र किया और चुप हो रहा।

गाड़ी चली और बहुत जल्द पास बैठे हुये लोगों से हमने बातें करना शुरू कर दीं। एक गम्भीर प्रकृति के खाकी पोशाक वाले ने मुझे बड़े ग़ौर से सिर से पाँव तक देखा—इस प्रकार, कि मुझे सन्देह हुआ कि अब यह कहता ही है कि मैंने कहीं आप को देखा है। पर बहुत जल्द मालूम हो गया कि यह बात नहीं है, बल्कि कारण दूसरा है। वह यह है कि मैं बड़ा ही रद्दी सूट पहिने हूँ...जैसे कि मैं किसी गोरे के तीजे (एक संस्कार जो मरने के तीसरे दिन होता है) में गया था और वहाँ से उसके दादा के तीलाए होने वाले सामान में से ले आया हूँ।

उन महाशय ने मुझे कुछ संदिग्ध दृष्टि से देख कर श्रीमतीजी की ओर भवों से इशारा करके कहा—"ये कौन हैं ?

मैंने कहा—"क्यों ! ये..."

"आप इनके साथ हैं ?"

"जी हाँ, मैं..."

"आप नौकर हैं इनके ?"

"जी ? क्या कहा आपने ?" मैंने इस प्रकार कहा, मानो सुना ही नहीं।

"मेरा मतलब यह है कि आप..."

"मेरी पत्नी हैं ये।" मैंने तनिक गर्व के साथ कहा।

"पत्नी !" उन्हें शायद ऐसा लगा कि मैं झूठ बोल रहा हूँ।

यह कह कर मैंने उस आदमीनुमा शक्की जानवर को देखा, जो मेरी बातों पर विश्वास ही नहीं कर रहा था। मुझे कितना क्रोध आया है उस बहमी पर कि बता नहीं सकता। वार्ता समाप्त होने के बाद, अर्थात् विश्वास करने से इनकार करने के बाद वह सिगरेट का धुआँ एक 'हुँकारे' के साथ दूसरी ओर नहीं छोड़ने लगा. बल्कि ज़ोर देकर मानो मुझसे कह रहा था कि 'तू झूठ बकता है।'

मैं भला, यह कब सहन कर सकता था ? मैंने उसका हाथ पकड़ कर अपनी ओर आकृष्ट करते हुए कहा—"जनाब को इस बारे में आखिर शक क्यों हुआ ?"

यह मैंने बहुत धीरे से कहा कि श्रीमतीजी कहीं सुन न लें,

नहीं तो कहतीं कि ऐसी बातें शुरू ही क्यों की। परन्तु उस बदतमीज़ और शक्की आदमी को तो देखिये कि उपहासप्रद ढंग से 'भक' से धुआँ मुँह से निकाल कर कहता है और वह भी मुस्करा कर बहुत ही धीरे से—"जी, पर धीरे से बोलिये।"

यह कहकर वह बेपरवाही से दूसरी ओर मुँह करके धुआँ उड़ाने लगा। मैं जलकर कबाब हो गया। मैंने मन में कहा कि ओ अभागे, तू मत विश्वास कर; शक्की जानवर जा चूल्हे में! पत्नी तो यह हमारी सोलह आने है..सिर्फ़ मेरी!

(३)

इसके बाद मैंने स्वयं अपना मुआयना किया। सुना करते थे कि पहले ज़माने में लोग घड़ों में कपड़े रखते थे। तब सन्दूक सब के पास नहीं थे। आज पता चला कि यह बात बिलकुल ग़लत है। बात वास्तव में यों होगी कि ऐसे लोगों की पत्नियाँ मैले कपड़े निकाल कर अपने पतियों को ज़बरदस्ती पहिना देती होंगी। अतएव मुझे श्रीमतीजी पर अत्यधिक क्रोध आया। सरक कर जरा क़रीब आया। वह समझीं कि मैं कुछ ज़रूरी बात कहना चाहता हूँ, अतः उन्होंने भी मेरी तरफ अपना कान बढ़ाया और मैंने चुपके से उनके कान में कहा—"क्यों जी, यह आखिर तुमने हमें समझा क्या है?"

इसके उत्तर में उन्होंने मुझे भौंहें सिकोड़ कर इस प्रकार देखा कि मुझे सन्देह हुआ कि वह ज़बान से कुछ कहने के बजाय शायद मन में मुझ से कह रही हैं—'मूर्ख!'

सहसा मुझे उनके इस प्रकार धृष्टता से देखने पर और भी क्रोध आया और फिर मैंने उसी तरह पूछा—"आख़िर तुमने हमें समझ क्या रक्खा है ?"

"हूँ !" आखिर उन्होंने कहा—"ख़ैर तो है ?"

मैंने भन्ना कर कहा—"यह हमारे अच्छे-अच्छे महँगे सूट, बल्कि सेकेण्ड क्लास में सफ़र करने के लायक मेरे सूट और बढ़िया-बढ़िया टाइयाँ वग़ैरह आख़िर किस दिन के लिये तुमने बनवा कर रक्खी हैं ? क्यों नहीं आखिर तुम पहिनने देतीं ? चलते समय हमने तुमसे कितना कहा कि यह सूट मैला और कितनी दफ़े का पहिना हुआ है, और इससे दो-चार बार जूता भी पोंछा जा चुका होगा। फिर यही क्यों पहिनने को दिया ? क्यों नहीं तुमने·····।"

बात काटकर वह भी धीरे से, किन्तु तेज़ी से बोली—"पागलों की-सी बातें तो करो नहीं। जानते हो, सफ़र में कपड़े ख़राब हो ही जाते हैं।"

अब आप ही न्याय करें कि ऐसे अनुचित जवाब से मैं कैसे जलकर कबाब न हो जाता। स्वयं तो पहिने हुए हैं रेशम के कपड़े, रेशम के मोज़े, ग्यारह रुपये वाला जूता और हम पहिने हुए हैं एक मैला-कुचैला सूट। टाई ऐसी जैसे भंगिन का कमर-बन्द और कालर ऐसा जैसे टामी का पट्टा और पैर में एक अँगरेज़ी जूता, जो सामने से ऐसा फटा है, जैसे अँगरेज़ों के नौकर साहब का उतारा हुआ जूता पाते हैं। इनके कपड़े तो मैले न

होंगे और हमारे हो जायँगे ! खुद जाने, कुरूप पतियों की इन सुन्दर पत्नियों ने मन में क्या सोच रक्खा है ! मैं जल ही तो गया, और मैंने बल खाकर कहा—"और यह तुम जो अपने अच्छे कपड़े पहिने हो ये मैले न हुए ?"

"रेल में ऐसी बातें नहीं करते।" यह मानो एक घसीट का पेंच था कि खींच कर वह काटा ! और जवाब आँखों से क्रोध का प्रदर्शन करके। बस, खतम !

मैंने भन्ना कर इस 'चटाखेदार' उत्तर पर क्रोध का घूँट-सा पिया, किन्तु अन्त में धैर्य न रहा और मैंने फिर जोश में आकर कहा—"आखिर यह भी कोई····"

पर मेरी बात तेज़ी से काट दी गई—यह कह कर कि—"और जो सफ़र में कोई मिलने-जुलने वाली मिल जाये तो...? बस, बच्चा बनते हैं।" यह कहकर मुँह दूसरी ओर फेर लिया, मानो आगे बहस मंज़ूर नहीं। मैं इसके सिवा क्या करता कि जलता और भुनता रहा। इतने में गाड़ी रुकी। एक सब-इन्स्पेक्टर साहब अपनी फ़ौज और इतने सामान के साथ रेलपेल करते हुए डिब्बे में आये कि श्रीमतीजी घबरा कर बोलीं—"हमें सेकण्ड क्लास का टिकट बनवा दो।"

मैं टिकट बनवाने दौड़ा।

मैंने कहना चाहा—"मगा···।"

"जल्दी···यह लो···जल्दी-जल्दी।" यह कह कर मुझे टिकट दिये और फिर कहने लगीं—"जल्दी करो।"

(४)

इन रेलवे के बाबुओं को इतनी जमुहाइयाँ आती हैं, और फिर ऐसी-ऐसी कि छोटी-छोटी आँखें मोटे-मोटे चेहरों पर खो-खो जाती है। दिल का खून सिमट कर नाक की फुनगी पर आ जाता है, और अंगड़ाइयाँ ऊपर से ऐसी बेतुकी और ऐसी बे-मौक़ा कि बयान नहीं कर सकता। यह नहीं देखते कि हमारा बोझ क्या है और जिस कुरसी पर हम स्वयं धरे हुये हैं, वह कैसी है। उन्हें तो इससे मतलब ही नहीं, बस अँगड़ाई लेने से काम है।

मैंने कहा—"जनाब, मुझे कानपुर तक के सेएकड क्लास के टिकट बनवाना है।"

उधर इसके जवाब में पहले तो मुझे उन्होंने ग़ौर से देखा और शायद किसी टूटे-फूटे अँगरेज़ का बटलर समझ कर जवाब में जमुहाई के साथ अंगड़ाई लेना उचित समझा और तभी कुरसी जो चरचराई, तो एकदम से ऐसा मालूम हुआ, जैसे जादू के ज़ोर से चेहरे पर आँखें पैदा हो गईं।

यह इटावा का स्टेशन था और मैं पुल पार करके प्लेटफार्म के उस तरफ़ गया था टिकट बनवाने। बाबूजी ने बड़ी कृपा की, जो कुछ देर के बाद एक लापता टिकट-चेकर का हवाला दे दिया। मैं उनकी खोज में लग गया और उन्हें हर जगह तलाश किया। स्टेशन के पाखाने के अतिरिक्त कोई भी जगह नहीं छोड़ी। मैं उनको खोज ही रहा था कि वह स्वयं मुझे तलाश करते हुये

आ पहुँचे। मैंने टिकट हवाले करके बदलने को कहा, तो उन्होंने कहा—"दाम ?" और मैंने जवाब में कहा—"अरे !" रुपये-पैसे का बटुआ श्रीमतीजी के पास है। अतः दौड़ा एकदम से टिकट-विकट छोड़ कर दाम लेने। दौड़ा ही था कि ख़याल आया कि कहीं टिकटचेकर टिकट सहित ग़ायब न हो जाय, अतः फिर दौड़ा वापस, और उधर रेल ने दी सीटी। जब तक मैं झपट कर उनके हाथ से टिकट वापस लूँ, रेल चल दी। अब बजाय पुल पार करने और उस तरफ़ पहुँचने के मैं रेल की पटरी फाँदकर बुरी तरह दौड़ा और जो डिब्बा सामने आया, उसी में बैठ गया। अब हाँफते-हाँफते खिड़की से सिर निकाल कर बाहर जो देखता हूँ, तो रेल तो प्लेटफ़ार्म के बाहर और श्रीमतीजी खड़ी हुई हैं असबाब सहित प्लेटफ़ार्म पर। बौखलाया हुआ तो आया ही था; बस, देखते ही उछल पड़ा। इरादा किया कि खिड़की खोलकर कूद जाऊँ, परन्तु एक बड़े मियाँ बैठे थे मोटे से। उन्होंने शायद सोचा कि यह पागल है, अतः हाथ पकड़ लिया। जल्दी में झटके पर झटके दे डाले, परन्तु हाथ नहीं छूट सका। वे न जाने क्या पूछने लगे और मैं न जाने क्या कहने लगा। उन्होंने खिड़की बन्द करते हुए मुझे छोड़ा, तो मैं जंजीर खींचने दौड़ा, पर वह भला कहाँ हिलती। दूसरों से पूछा तो वे कारण पूछने लगे। सब पलक झपकाते ही हो गया। कारण बताया, तो फिर बड़े मियाँ ने हाथ पकड़ कर बैठा लिया और कहा—"आख़िर इतनी घबराहट क्यों है ? तार दे देना अगले स्टेशन पर से और

दूसरी गाड़ी से वापस आ जाना।" बात मेरी समझ में आ गई। झाँक कर फिर श्रीमती जी को देखने की कोशिश की। ख्याल आया कि ठीक है, ऐसा हो चुका है। उस बार जब रह गया था, तो श्रीमतीजी चली गई थीं। बाद में उन्होंने कहा था कि मैंने भूल की। अगले स्टेशन पर उतर कर तुम्हें तार दे देती और तुम आ जाते। मैंने कहा—"मैं खुद पहुँचकर आगे तार दे दूँगा और वह आ जायँगी।"

(५)

एक्सप्रेस के रुकने का दूसरा स्टेशन जसवन्तनगर था। वहाँ उतरा, तो पहले ही से तार मौजूद था। लिखा था कि इस नाम के आदमी को डिब्बे में से यह कह कर उतार लो कि तुम्हारी पत्नी इटावा में उतर गई हैं। मैं उतर ही चुका था। मेरे पास तार के पैसे भला कहाँ? परन्तु पता चला कि तार मुफ़्त दिया जायगा। अतः मैंने तार दिलवा दिया कि—'घबराना मत, मैं उतर पड़ा हूँ। दूसरी गाड़ी से चली आओ।'

मेरे यहाँ पहुँचने के थोड़ी देर बाद ही एक मालगाड़ी इटावा जा रही थी। मैंने मन में सोचा कि विरह के सदमे कौन उठाये? इससे अच्छा है कि चले चलो। मालूम हुआ कि सेकण्ड क्लास का टिकट लेना पड़ेगा। जब हमने कहा कि रुपये नहीं हैं, तो यह भी तय हो गया कि अच्छा, तुमको मुफ़्त पहुँचा दिया जायगा। हमने कहा कि अच्छा है और खुश थे कि गार्ड साहब ने बड़े इतमीनान से प्रोग्राम बताया; अर्थात् यह कि इतना तो विश्वास

था कि कभी न कभी तो यह गाड़ी अवश्य पहुँच जायगी; परन्तु यह पता नहीं था कि वहाँ पहुँचेगी कब ? सवारी गाड़ी जो इसके बाद जायगी, उससे पहले या बाद में ? खोज करने पर पता चला कि सवारी गाड़ी बीच के किसी स्टेशन पर नहीं रुकेगी और यह अवश्य रुकेगी। पहुँचने के बारे में आशा थी कि सवारी गाड़ी से कुछ पहले पहुँचेगी; किन्तु यदि ऐसा न हुआ तो सम्भव है, सवारी गाड़ी के भी आध घण्टे बाद पहुँचे। और फिर अभी तो यह भी पता नहीं था कि कमबख्त छूटेगी कब ? जहन्नुम में जाय ऐसी गाड़ी ! हमने इरादा बदल दिया और लगे सवारी-गाड़ी का इन्तज़ार करने।

इन्तज़ार भी बुरी चीज़ है, और फिर ऐसे मौक़े पर। तंग आकर हमने भी बड़े धैर्य से एक कुरसी पर बैठ कर, आँखें आधी बन्द करके पैर हिलाना शुरू कर दिये। यहाँ तक कि थक गये। फिर बड़ी देर तक आँखें खोल कर सीटी बजाते रहे। इसके बाद फिर पैर हिलाये। ख्वाहमख्वाह घड़ी बार-बार देखी। सन्देह हुआ कि सुइयाँ चल नहीं रही हैं। कान से कई बार लगा कर देखा। बार-बार अपनी घड़ी में समय देखा और फिर स्टेशन की घड़ी देखने गये। कुछ बस न चला, तो सोचा कि लाओ, कुछ न सही, तो पानी ही पियें। पानी पीने जा रहे थे कि ख्याल आया कि पेड़ा खाकर पानी पीना ठीक रहेगा। पहुँचे पेड़ेवाले के पास। कहा कि दो आने के पेड़े देना। वह तौलने को हुआ, तो ख्याल आया कि पैसे ? तुरन्त उससे पेड़ों का भाव

पूछ कर महँगे होने के कारण लेने से इनकार किया और वहाँ से सीधे प्लेटफ़ार्म के कगर पर टहलना शुरू किया। बहुत जल्द निश्चय कर लिया कि इस प्रकार टहलना चाहिये कि हर क़दम नपा-तुला पत्थर के टुकड़े के भीतर ही पड़े। अतएव इस प्रकार प्लेटफ़ार्म के किनारे-किनारे टहल कर उसके पत्थर दो बार गिन लिये। इसके बाद सिगनलों को जाकर दबाना शुरू किया। एक कुली ने स्टेशन-मास्टराना शान से आकर रोका और बताया कि यह तो बहुत अनुचित और मना है। सारांश यह कि आप से क्या बतायें कि कैसे समय काटा है।

(६)

हमारी ओर से श्रीमती जी की ओर गाड़ी पहले-जाती थी और इसी का हमें इन्तज़ार था। गाड़ी आई और हम टिकट लिये बिना उसमें बैठ कर रवाना हुए, क्योंकि हमारे पास टिकट मौजूद ही थे। जब चल पड़े, तो पहुँचते क्यों न? पहुँचे और यह सोच कर कि जोरू वेटिंग-रूम में बैठी होगी, उसमें धड़धड़ाते हुए घुसते चले गये। वहाँ श्रीमतीजी के स्थान पर एक मोटा-सा अँगरेज धरा था। उसने सोचा होगा कि यह बटलर किधर से घुस आया और अँगरेजी में पूछा—"क्या है?"

उलटे पाँव लौटे वहाँ से। हमें भला कहाँ फ़ुरसत कि अँगरेज से उलझें या उसे जवाब दें। इधर देखा, उधर देखा, तरह-तरह के शक हो रहे थे कि एक बाबू साहब मिले। उनसे हमने पूछा—"क्यों जनाब?"

"कहिये।"

"यहाँ पर एक मुसलमान लेडी...मुसलमान औरत ."

"हाँ, हाँ,!" ये बोले—"वही न जिनके मियाँ उन्हें छोड़ कर आगे चल दिये! अजब बेवकूफ हैं वह भी (एक दम से कुछ सोच कर)...पर आप?...वह तो गईं शायद।"

"कहाँ गईं?" मैंने गुस्से को दबाते हुए कहा। और फिर वैसे भी परेशानी क्रोध से बढ़ी हुई थी।

"अगले स्टेशन पर—शायद जसवन्त नगर।"

"कब? कैसे? एँ, कब?" मैंने बदहवास होकर पूछा।

"मालगाड़ी पर गईं...असबाब तो उनका जाते मैंने देखा था...जरूर गई होंगी...। मगर आप?" उन्होंने मुझे सिर से पैर तक देखा।

मैंने कहा—"वह मेरी पत्नी हैं।" यह कह कर मैंने जानबूझ दूसरी तरफ नजर कर ली।

"आप की?" यह कह कर संदिग्ध दृष्टि मेरे ऊपर डालते हुए चलते-चलते वह रुक गया—"आपकी?" उसने फिर कहा।

"जी हाँ।" मैंने कहा—"जरा, पता लगा कर बताइये।"

"ओ हो, माफ कीजियेगा।" उसने कहा—"आइये!" और यह कह कर वह आगे चला। हम दोनों बुकिंग-आफिस में पहुँचे और वहाँ पता लगाने पर मालूम हुआ कि वह गई माल गाड़ी से। और फिर मालगाड़ी भी कौन-सी? वह जो रास्ते में छोटे स्टेशन पर हमारी गाड़ी को मिली थी।

जोरू के गड़बड़ में पड़ जाने के कारण मेरी बदहवासी बढ़ रही थी। लाख विश्वास दिलाता हूँ उन मूर्ख बाबुओं को कि जनाब, गलती उस मूर्ख पत्नी की है न कि मेरी। पर वे दुष्ट कहे जाते हैं कि—"जनाब, वह तो बहुत होशियार मालूम पड़ती हैं। गलती खुद आपकी है कि आप क्यों चले आये, जब आपका रास्ता उधर ही को था।"

अब बताइये कि मैं उन मूर्खों से क्या यह कह देता कि हमें उसकी मोहब्बत खींच लाई; हम उसके बिछोह को न सह सके! इतनी बुद्धि ही नहीं उनमें कि मेरी बात वे समझते। लगे कठ-हुज्जती और बहस करने। मैंने बहुत कुछ कहा कि इस वजह से चला आया कि गाड़ी पहले इधर आती है। पर ये कम्बख्त रेलवेवाले, अजी, एक ही बकवादी और नालायक़ होते हैं। न मानना था, न माने। उन्हें न कायल होना था, न हुये। खैर, मैंने मन में कहा कि इनके दिमाग़ तो रेल की सीटियों और 'झक-झक फक-फक'' ने उड़ा दिये हैं। और श्रीमतीजी एक चलता-पुर्ज़ा! उन्होंने अवश्य कुछ लगाई होगी। अतः इनकी स्थिति दयनीय है, इसलिये उन लोगों को तो मैंने उनके हाल पर छोड़ा और कहा उनसे कि खैर, खता और ग़लती मेरी सही! अब आप ही इतनी बुद्धिमानी करें कि एक तार दे दें, उसको अगले स्टेशन पर कि मैं यहाँ हूँ। परन्तु ख़बरदार, अब तुम वहीं रहना।

(७)

इसके बाद मैंने सोचा कि क्या करना चाहिये। गाड़ी आने में बहुत समय था। भूख अलग लग रही थी। सोचा कि ज़रा शहर में चल कर इस्लामिया स्कूल के पुराने साथियों में-से किसी को ढूँढ़ें। अतएव पहुँचे एक साहब के यहाँ, जिन्हें बहुत दिन हुए तब हमने आठवीं कक्षा में छोड़ा था और विश्वास था कि अब वे नवीं कक्षा में आ गये होंगे। सौभाग्य से मिल गये और खूब मिले। जो बातें होती हैं, वही हुईं, अतः उनका उल्लेख बेकार है।

अब यहाँ एक भूल हमसे हो गई। वह यह कि गाड़ी का ठीक समय मालूम करना भूल गये। गाड़ी का इस तरह का नाम याद रह गया जैसे साढ़े दस बजे वाली, पौने पाँच बजेवाली इत्यादि। इस ग़लती का हमने उस समय अनुभव किया, जब समय क़रीब आया और हमने अपने मित्र से चलने को कहा। उन्होंने स्वाभाविक ढङ्ग से यह कह कर रोकने की कोशिश की कि गाड़ी में अभी देर है। अतएव कुछ देर रुकने के बाद अन्दाज़ से ही चल दिये। स्टेशन पर पहुँच कर जब तक इक्के से उतरें-उतरें कि गाड़ी प्लेटफ़ार्म छोड़ चुकी थी।

या मेरे खुदा! अब मैं क्या करूँ? दोस्त से दाम लेकर श्रीमतीजी को तार दिया, संयोगवश गाड़ी छूट गई और हम दूसरी गाड़ी से ज़रूर आ रहे हैं।

तार देने को तो हमने दे दिया: परन्तु अब यह सोच रहे

थे कि क्या होगा ? शामत आ जायगी। वह लड़ाई होगी कि क्या बताऊँ ! उन मित्र को यह सज़ा दी कि बैठो अब मेरे साथ और मुझे बिदा करके ही जाना।

... ...

गाड़ी आई और हम बिदा हुए। जसवन्तनागर का स्टेशन आया। हम समझे थे कि स्टेशन पर श्रीमती जी सामान लिये तैयार खड़ी मिलेंगी, पर यहाँ कोई नहीं था। जल्दी से उतरे और एक कुलीनुमा आदमी से जो पूछा, तो उसने उत्तर दिया—"सो रही होंगी वेंटिंगरूम में।"

मुझे क्या पता कि उस कमबख्त ने योंही अटकल से कह दिया है। अतएव मैं यह सुनते ही वेटिंग-रूम की ओर दौड़ा और साथ ही ज़ोर से कुली को भी आवाज़ दी। क्या देखता हूँ कि दरवाज़ा बन्द है और वह भी भीतर से। ग़ज़ब हो गया ! मैंने मन में कहा—सो रही हैं घोड़े बेच कर, और यहाँ गाड़ी निकली जाती है। झाँक कर देखा, तो अँधेरा ! जानता था कि बिना बत्ती बुझाये उन्हें नींद ही नहीं आती। अब मैंने बदहवास होकर किवाड़ धड़धड़ाना शुरू किये, पर वहाँ जवाब नदारद ! इतने में रेल ने सीटी दी। मैं और भी घबरा गया। समझ में न आया कि क्या करूँ। निराश होकर अपने डिब्बे की ओर लपकने को हुआ कि टोपी तो ले लूँ कि एक कुली ने रोका। रेल ने एक और सीटी दी। कुली से मैंने कहा "ठहरो !" और लपका अपने डिब्बे की ओर टोपी लेने। लेकिन घबराहट में न

जाने किस डिब्बे में घुस गया। वहाँ से निकला और अब इधर दौड़ता हूँ और उधर, पर जल्दी में अपना डिब्बा नहीं मिलता। रेल ने एक और सीटी दी, और अब मुझे ख़याल आया कि वह है अपना डिब्बा। रेल चली और मैं लपका। मालूम हुआ कि भूल हुई—और पीछे है, पर अब गाड़ी तेज़ हो चुकी थी। खड़े का खड़े रह गया। अपना डिब्बा सामने से निकला और मैंने देखा कि वह सामने मेरी टोपी रक्खी है। गाड़ी काफ़ी तेज़ हो चुकी थी, अतः सिवाय खड़े ताकते रहने के और कुछ कर भी तो नहीं सकता था।

(८)

ख़ैर, मैंने मन में कहा—टोपी गई तो क्या हुआ। अच्छा है कि श्रीमतीजी ने नई टोपी नहीं दी थी। अब इतमीनान से आध घण्टे वेटिंग-रूम में लड़ेंगे और फिर सोयँगे। सुबह की गाड़ी से जाना होगा, अतएव मैं वेटिंग-रूम के पास आया और दरवाज़ों को ज़ोर से पीटा।

वही कुली आया और कहने लगा, "अन्दर से कमरा बन्द है। वेटिंग-रूम का चपरासी पीछे की ओर से ताला डालता है। आपको खुलवाना है, तो स्टेशन-मास्टर साहब से कहिये।"

"अयँ!" मैंने आश्चर्य से कहा—"तो इसके भीतर कोई नहीं है? कोई औरत·····?"

"एक बेगम साहिबा आई थीं, पर वह तो चली गईं।"

"अरे!" मैंने उछल कर कहा—"किधर?"

"इधर !" कहकर कुली ने बड़ी सादगी से रेल की पटरी की ओर अँगुली उठा दी।

मैंने बेहद परेशान होकर एक गहरी साँस ली। जी में आया कि इन रेलवे वालों से ख्वाहमख्वाह लड़ पड़ूँ। अब मुझे पता चला कि पुराने ज़माने की बैल गाड़ियों की यात्रा में क्या-क्या लाभ थे। लाख कष्ट थे, पर इतना परेशान करनेवाली तकलीफ़ न होगी। ज़रा सोचिये तो कि ख्वाहमख्वाह मेरा सफ़र खोटा हुआ। श्रीमतीजी का यह अपराध कभी क्षमा नहीं किया जा सकता। उनको ऐसा हरगिज़ नहीं करना चाहिये था। आख़िर क्यों चल दीं ? कैसे चल दीं ? उन्हें क्या हक़ था चल देने का ? ख़ैर, देखा जायगा। इसी तरह मैं देर तक बल खाता रहा। परन्तु शीघ्र ही क़ायल होना पड़ा कि रात का समय है; सर्दी का मौसम है और दुनिया में हैरानी और परेशानी के अतिरिक्त एक और चीज़ भी है और उसका नाम शायद नींद है। किन्तु बहुत जल्द जाड़े ने कहा कि महाशय न तो रात कोई चीज़ है और न नींद। यदि है कोई तो बस मैं ! और यही मुझे स्वीकार करना पड़ा। किन्तु, चूँकि इस समय मुझे जाड़े पर कोई लेख नहीं लिखना है, अतः मौसम की ज्यादतियों को छोड़िये सिर्फ़ यह सोचिये कि आग तापते हुए कुलियों के पास बैठकर अगर बदन को गर्मी पहुँचाना असम्भव था, तो यह भी असम्भव था कि बिना ओढ़े-बिछाये सो रहूँ या एक और आदमी की एक मैली-सी रज़ाई छीन लूँ, जो मुझे दिखा-दिखाकर ओढ़

रहा था और ललचा रहा था। बस, ऐसा समझिये कि मालूम होता कि अब सुबह नहीं होगी और इसी तरह सिकुड़ कर शायद मर जायँगे। पैसा पास नहीं। हाँ, टिकट एक छोड़ दो-दो थे।

जैसे-तैसे करके सुबह हुई। गाड़ी भी आई, बैठ भी गये और गन्तव्य स्थान पर यह हुलिया लिये पहुँच भी गये कि रात के जागे हुए और सिकुड़े-सिकुड़ाये मैला सूट पहिने और नङ्गे सिर। परन्तु वहाँ पहुँचे और पता जो लगाया, तो जनाब जोरू नदारद!

या मेरे ख़ुदा! अब मैं क्या करूँ? यह किधर गई आख़िर? क्या खो गई? एक जगह और भी खोजवाया, पर वहाँ भी पता नहीं। अन्त में ससुराल तार दिया और वहाँ से जवाब आया कि सकुशल पहुँच गईं। मानो वहीं जा रही थीं। अब इसके सिवा और क्या चारा था कि यहाँ से कर्ज़ लेकर हम ससुराल पहुँचें।

(६)

शाम को कोई पाँच बजे होंगे, जब मैं ससुराल पहुँचा। घर में जो घुसा, तो क्या देखता हूँ कि ससुर साहब नमाज़ पढ़ने के बाद दुआ माँग रहे हैं। दो-तीन छोटे-छोटे साले एक चारपाई पर बैठे हुये थे। उनमें से एक उछल पड़ा और मैंने भी उसे पहिचान लिया। किस तरह उस नालायक ने मानो ख़ुशी के लहज़े में भर्राई हुई आवाज़ से चुपके से कहा है कि मैं सुन कर जल-भुन कर कबाब हो गया। उसका सारा चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा, और तेज़ी से चारपाई से यह कहता हुआ उतरा—

"भाई मियाँ खो···खो गये···मिल···" यह कहता हुआ वह भीतर दौड़ा—बाक़ी दोनों उसके पीछे। अन्दर पहुँच कर उसने शायद गला फाड़ कर नारा मारा··· "तुम तो कहती थी भाई मियाँ खो गये···मिल···"(सुनाई नहीं दिया)।

मैंने ससुर साहब को सलाम किया इशारे से उन्होंने रोका और जल्दी से दुआ को ख़त्म करके कहा—"वालेकुम अस्सलाम, ज़िन्दाबाद···अरे मियाँ कहाँ खो गये थे?" मुस्कराते हुये उन्होंने कहा।

मैं भला क्या कहता! जी में तो यही आया कि कहीं कोश मिलता तो दिखलाता कि जनाब, खो जाना और चीज़ है; और रह जाना और चीज़। फिर यह सेवक तो इस बार रह भी नहीं गया, बल्कि आपकी सुपुत्री की कृपा से यह सब कुछ हुआ। संक्षेप में इस प्रकार समझाया कि सारा दोष श्रीमतीजी पर आये. किन्तु वह जो किसी ने कहा है कि अपने तथा पराये में फ़र्क होता है, बहुत सच कहा है। लगे हज़रत वही किस्सा सुनाने यानी गिनाने लगे वे सब चीज़ें, जो सफ़र में मुझ से खो ग थीं। और फिर बाद में टीप का बन्द—"तुम्हारे साथ तो औरः का सफ़र करना ख़तरे से ख़ाली नहीं।"

उनसे निपट कर घर में पहुँचा, तो पर दादी टाइप की बाहरी स्त्री को सासजी चीख़-चीख़ कर उखड़े-उखड़े वाक्य में मेरे मिल जाने की ख़ुशख़बरी सुना रही थीं—"मिल गया हाँ, आ गया। हाँ, अभी आया है।"

"मिल गया ?" बड़ी बी बोलीं।

"हाँ, मिल गया।" सास साहिबा बोलीं—"मिल गया। यह क्या खड़ा है। सलाम करता है।"

"जीता रहे हज़ारों बरस ! इसके दुशमन खो जायँ।"

बड़ी बी दुआयें दे ही रही थीं कि घर की हड़बोंग सुन कर पड़ोसिन ने आवाज़ दी। बातचीत के लिए दीवार में एक छेद कर लिया गया था। वहाँ एक और बुढ़िया खड़ी पड़ोसिन को कुछ बताने लगीं। पूरी बात मैंने नहीं सुनी, परन्तु हाँ, इतना अवश्य सुना—".. उसके...दुश्मन . थे...मिल ..हाँ...अभी .."

अब मेरे लिए असह्य हो गया था। जी चाहा कि फट पड़ूँ; एक सिरे से सब की खबर ले डालूँ। अन्त में मैंने दबी ज़बान से कहा—"कौन खो गया था ? मैं कोई बच्चा हूँ, जो खो जाता ! ख्वाहमख्वा आप लोग .."

मैं एकदम से चुप हो गया। सामने अपने कमरे से श्रीमतीजी अँगुली से चुप रहने का संकेत कर रही थीं। मैं उधर देख ही रहा था कि एक और दादी ने अपनी दिलचस्प आवाज़ में कहा—"मेरी चमेली की कली ! कहाँ खो गई थी ?"

उन्हें देख कर मुझे वैसे ही हँसी आती है। हँस कर मैंने कहा—"दादी सलाम !"

इसके जवाब में उन्होंने दुआ देकर मेरी बलैयाँ लीं और कहने लगीं—"क्या बताऊँ बेटे, जब से मैंने सुना कि तू खो गया, दिल उलटा आता था। मैंने न्योछावर के उड़द माने हैं।"

"आप भी कैसी बातें करती हैं।" मैंने कुछ बुरा मानते हुए कहा—"कोई बच्चा हूँ मैं, जो सब कह रहे हैं कि मैं खो गया था?"

"फिर और कैसे खो जाते हैं?" दादी ज़रा तेज़ होकर बोलीं—"खुद तेरी घरवाली कह रही है कि तू खो गया था। जिसका अता-पता न मिले कि किधर गया और कहाँ रह गया, तो उसे यही कहेंगे कि खो गया। ..और मियाँ, अल्लाह रक्खे, तुम हो भी तो बिलकुल भोले अहमक! दुनिया जहान की चीज़ें खोते-फिरते हो। आये दिन सुनने में आता है कि यह खो गया. वह खो गया। फिर कल सुना कि लो तुम खुद कहीं खो गये?"

मैंने कुछ हँस हँस कर और कुछ बिगड़ बिगड़ कर बताया कि न तो मैं खो सकता हूँ और न खो गया था, और आगे मेरे साथ इस गन्दे शब्द का प्रयोग न किया जाय। पर यहाँ का तो वायु-मण्डल ही मेरे और हर समझदार व्यक्ति के खिलाफ़ है। जब मैंने कहा कि मैं खोया नहीं, बल्कि रह गया था तो वे बोलीं—"बेटा, रह तो हमारी बच्ची गई थी। तुम तो आगे जाकर न जाने कहाँ खो गये थे।"

सारांश यह कि थोड़ी देर उनसे और बहस की और जैसे भी बना, अपनी जान छुड़ाई।

... ...

इसके बाद श्रीमतीजी से बहस हुई। उन्होंने मुझे दोष दिया और मैंने उन्हें। वह इटावे पर उतरीं और सेकेण्ड क्लास में

बैठीं और जब देखा कि मैं ग़ायब हूँ और रेल चल देगी, तो उतर पड़ीं। और उधर दूसरी ओर से दौड़ कर मैं बैठ गया। मेरा इरादा तो बहुत कुछ लड़ने का था, परन्तु आगे के लिये उठा रक्खा। मैंने उनसे कहा कि तुम खो गई थीं और उन्होंने कहा कि तुम खो गये थे। अब फैसला पाठकों के हाथ में है कि कौन मूर्ख है। यों मूर्ख तो दोनों हैं; परन्तु सवाल यह है कि अधिक मूर्ख कौन है और खो कौन गया था; मैं कि वह ?